❖ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❖

दिनचन्द्रिका

श्रीहरिदास शास्त्री

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

प्रकाशक :

श्रीचैतन्य संस्कृति संस्था

(श्रीहरिदास निवास)

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

फोन : ०५६५-३२०२३२५

❖

प्रकाशन तिथि :

श्रीराधाजन्माष्टमी

श्रीगौरांगाब्द : ५२२

❖

प्रथमसंस्करणम्

❖

प्रकाशन सहयोग :

२०) रुपया मात्र

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

❖ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❖

दिनचन्द्रिका

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण
सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, न्याय, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस
श्रीहरिदासनिवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

* श्रीहरिः *

विज्ञप्तिः

कालकी कुटिल गतिने सम्प्रति धर्मशब्दको भी अर्थहीन कर दिया है, फलतः मानव मन की उदासीनता धर्माचरण के विषय में अत्यधिक छा गई है, तथापि धर्मशब्द जीवित है, एवं यह सम्प्रति आंशिक रूपमें जनजीवन के जीवित रहने का सरल साधन भी बन गया है, किन्तु इतनी असारता धर्ममें है कि जिसके सम्पर्क से मानव जीवन ऊब जाता है, व्याकुल भावसे मन अवलम्बनान्तर को ढूँढ़ने लगता है, भाग्यवश अवलम्बनान्तर मिलनेपर उसका जीवन मूकास्वादवत् होता तो है ही, गूंगेपन की घबड़ाहट से जीवन दूभर हो जाता है, तथापि मोहक शब्द है धर्म जिसको छोड़कर मानवगण रह नहीं सकते हैं।

मानव जीवन के साथ धर्मशब्द इतना जुड़ा हुआ है कि–जीवन एवं धर्म, दोनों अभिन्नरूपसे समय समय पर प्रतीत होने लगते हैं। कोई कहता है,–जीवित रहने का फल ही धर्म है, अपर कहता है,–जीवनका फल अर्थोपार्जन है, अर्थका फल इच्छाको तृप्त करना है, इच्छाकी तृप्तिभी इन्द्रिय तर्पण से ही होती है।

मनीषिगण सुप्राचीन कालसे विमर्श के द्वारा जिस सिद्धान्तमें उपनीत हुए हैं, वह यह है, जिससे मानव सुमहान् बनकर दूसरे का उपकार कर सकता है, उस पदार्थका फल अर्थोपार्जन है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है, अर्थका फल, इच्छाकी तृप्तिभी नहीं है, इच्छाकी पूर्णता भी इन्द्रिय तर्पण में नहीं है, किन्तु जीवित रहने का फल,–यथार्थ वस्तु को जानना ही है, जो मनुष्येतर शरीर में सम्भव नहीं है। ऋषिगण, सर्व बृहत्तम पदार्थ ईश्वरको ही '**सत्य**' नामसे कहते हैं, उनका सर्वजन हितकर अनुशासन वाक्य ही '**धर्म**' है, निष्कपट भावसे उसका पालन करके चलना ही **धार्मिकता** है। इस हेतु सर्व जन हितकर नैतिक

मर्यादायुक्त धर्मप्रियता से मानवगण अपनेको अलग रख नहीं सकते हैं।

ईश्वरीय आदेशसे चलनाही सबके लिए सर्वथा हितकर होता है। आदेश पालन की रीतिभी दो प्रकार हैं। एंकतो मनको समझा बुझाकर, लाभहानिको देखाकर ईश्वरीय आदेशके अनुसार चलने के लिए मनको विवश किया जाता है। इसमें फलके प्रतिही मन लगा हुआ रहता है, आदेश कर्त्ता ईश्वरका अनुसन्धान मन नहीं करता है, फलप्राप्तिके लोभसे कठिनसे कठिन क्लेशकर अनुष्ठानको मानव करता रहता है, और अत्यन्त कठोर हृदय होकर धार्मिक संज्ञासे मुक्त हो जाता है। प्राणिमात्रके उल्लास सम्पादनमें अपनेको सतत रतकर देनाही **धार्मिकता** है, ईश्वर इस आचरणसे ही आचरणकारीके प्रति सन्तुष्ट होते हैं।

मनकी दूसरी गति है,-प्रियता। इसमें फलके प्रति दृष्टि नहीं होती है, ईश्वरके प्रति स्वाभाविक ममता होनेसे प्रियजनके सुखके लिए ही हृदय उल्लास से भर जाता है और वह मन आनन्द से सब आदेश का ज्यों के त्यों सतत निर्वाह कर लेता है, इसमें प्रमाद, निर्वेद, अवसाद आदि नहीं आते हैं। वह मन धार्मिक होता है। उभय पक्षमें चलने का पथ एक जैसा होने परभी सर्वादि प्रवृत्ति के हेतुके पार्थक्य से दोनों पृथक् हो जाते हैं।

सत्सङ्गसे ही उत्तम पथका परिज्ञान होता है, उत्तम पथका वर्णन ईश्वरीय उपदेशरूप शास्त्र में विद्यमान है। शास्त्रज्ञ अनुभवी सत्य आचरण परायण जनही उपदेष्टा होता हैं। उनसे शास्त्रीय विवरण को जानकर चलना ही श्रेयेच्छु मानवके लिए सर्वोत्तम कार्य होता है। उच्छृङ्खलतासे मनको मुक्तकर मनको सुशृङ्खल बनाने के लिए विषय वस्तुका परिज्ञान एवं दृढ़तर अभ्यासकी आवश्यकता होती है, प्रस्तुत **दिनचन्द्रिका** ग्रन्थ मानव मनको सुशृङ्खल करनेके लिए विशेष उपयोगी होगा।

- हरिदास शास्त्री

सूची-पत्र

क्रम		पृष्ठमें
१.	मङ्गलाचरण	१
२	प्रात:कृत्य उपासना	१-३
३	पञ्चोदेवोपासना	३
	पञ्चोपचारसे पूजा	३
४	अर्चन सन्ध्याविधि मन्त्र जप रहस्य, आरति नियम, आसनशुद्धि, भूतशुद्धि, नैवेद्य अर्पण, तुलसीसेवा, विज्ञप्ति कीर्त्तन, तुलसीसेवा तुलसी माहात्म्य	३-२६
५	भजन नियम प्रसादीग्रहण	२६-२८
६	स्मरण	२८-२६
७	विश्वदृष्टि	३०
८	रम्या उपासना	३१
६	कायिक, वाचिक, मानसिक साधना	३२
१०	शरणागति	३३
११	रम्या उपासना का अधिकारी	३४

क्रम		पृष्ठमें
१२	यम नियम	३५
१३	नाम साधना	३६
१४	साधुसङ्ग	३७
१५	श्रीविष्णु का ध्यान	३७
१६	प्रणाम	३८
१७	सूर्य्यध्यान, प्रणाम, अर्घ्यदान, गणपतिध्यान, प्रणाम महेशका, ध्यान, प्रणाम	३८
१८	श्रीदुर्गाका ध्यान प्रणाम	३६
१६	शतनामस्त्रोत्र	३६-४१
२०	श्रीशिवस्त्रोत्र	४१
२१	श्रीविष्णु स्तव	४२-४३
२२	श्रीसूर्यकवच	४३-४४
२३	श्रीहरिद्रागणेश कवच	४५
२४	पूजाके उपचार, पञ्च, दश, षोड़श, चतु:षष्टि	४६-४७
२५	सेवापराध	
२६	श्रीनाम सङ्कीर्त्तन महिमा	४८

❖ श्रीहरि: ❖

दिनचन्द्रिका

माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ।
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनतिप्रियौ।।
प्रणम्य सच्चिदानन्दमीश्वरं विश्वशान्तिदम्।
मानवानां प्रमोदाय चिनोमि दिनचन्द्रिकाम्।।

सूर्योदय के पहले जगना हितकर है, समुद्रमेखले देवि! पर्वत स्तन मण्डले विष्णुपत्नि! नमस्यामि पादस्पर्शं क्षमस्व मे। इस मन्त्रसे पृथिवी के निकट पादस्पर्श जनित क्षमा प्रार्थना करे एवं 'प्रियदत्तायै भुवे नमः' इस मन्त्र से प्रणाम करके शय्यात्याग करे।

सूर्योदय होने के दो घन्टे पहले जगना उत्तम है, सूर्योदय के बाद जगना निषिद्ध एवं पाप है, उठकर शौचादि क्रिया करना परम आवश्यक है, दांत एवं जीभ को साफ करना एकान्त प्रयोजन है, अन्यथा किसी भी कार्य में अधिकार नहीं होता है। जागरण शयन प्रभृति निखिल अवस्था में श्रीभगवन्नाम स्मरण की आवश्यकता है, ईश्वर एक है और उनके गुणकर्मानुरूप अनेक नाम भी है, इनमें से जो भी नाम जो शिव, पार्वती, विष्णु, गणपति, सूर्य प्रभृति नाम से सुपरिचित है, और जो नाम अपना अति प्रिय है, उसका स्मरण निरन्तर करे।

प्रातः स्नान करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है, स्नान करने में असमर्थ होनेपर शुद्धवस्त्र पहने, उत्तरीय धारण भी विहीत है, एक वस्त्रसे अर्चन भोजन प्रभृति क्रिया करना निषिद्ध है। अनन्तर शुद्धासन में उपवेशन करें, कम्बल, कुशासन, पवित्र आसन है, उसके ऊपर वस्त्र देकर बैठें। बैठने के लिए स्वस्तिक आसन प्रशस्त है, शरीर को सीधा करके बैठना हितकर है। कटि, मेरुदण्ड, ग्रीवा एवं मस्तक, बैठते समय सीधा अवश्य होना चाहिये। आसन में बैठकर अर्थ के साथ निज प्रिय इष्टदेव के नाम

का जप करे, एवं उसके अक्षरों के प्रति दृष्टि रखें, जप करते समय बिलकुल नेत्र मुद्रित न करे, थोड़ा खोलकर रखे, बिलकुल बन्द करने से नींद आती है, बिलकुल खोलकर बैठने से चित्त विक्षिप्त होता है, केवलमात्र प्रिय नाम स्मरण में ही मन निरत रहे अन्यत्र आवेश न हो इस प्रकार अनुसन्धान रखना आवश्यक है, चित्रपट में पूजा करना हो तो चित्रपट दर्शन करके ही पूजा करे।

परहितकर गुणकर्म जिसमें जितना अधिक है, वही ही उतना पूज्य होता है, सृष्टि तत्त्वमें मनुष्य शरीर का स्थान ही प्रथम है, इसमें आहार, निद्रा, आत्मरक्षा, पुत्रोत्पादनाक्रिया, सर्वशरीरकी भांति होने पर भी कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिर्णय के लिए मनुष्य शरीर में शास्त्रीय ज्ञानकी आवश्यकता है, उसका यथार्थ उपयोग मनुष्य शरीर में ही होता है। मनुष्येतर शरीर पूर्व पूर्व संस्कार के अनुसार चलते रहते हैं, इसमें उच्छृङ्खलता स्वार्थ परायणता विद्वेष प्रमाद नहीं होता है, ईश्वरीय अनुशासनका पालन भी मनुष्येतर शरीर समूह ठीक तरह करते रहते हैं, केवल मनुष्यशरीर ही ऐसा है जिसमें शास्त्रीय शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता होती है, अन्यथा यह शरीर किसीको भी सुख से रहने नहीं देगा, इतना उच्छृङ्खल बन जायेगा कि–पृथिवी उसके भारसे दब जाती, कँप जाती है, हिमालय समुद्र प्रभृति से भी एक उच्छृङ्खल मनुष्यशरीर का भार अधिक होता है, इस भार से मुक्त करनेके लिए पृथिवीमें ईश्वर का अवतार होता है, साधुपुरुषगण भी उस मानवको सुशिक्षा देने के लिए ही आते हैं।

मनुष्य दलबद्ध होकर गुणकर्म हीन व्यक्ति को सुप्रतिष्ठित करता है और उसकी परम्पराको चालू रखता है, यह निविड़ साम्राज्यवाद है, धर्म ही एकमात्र सत्य साम्यवाद है, जिसमें वास्तविक सर्वजन हितकर गुणकर्म को देखकर ही सम्मान देनेकी व्यवस्था है, अन्यथा मानव तथा मानवेतर को चैन से रहना दुष्कर हो जाता है।

एक समयकी बात है, जब विश्व स्रष्टाने विश्वको एवं विश्व संचालकवर्ग को निर्माण किया तो उस समम विश्व संचालक मुखिया

वर्ग दलबद्धहोकर सब व्यक्ति अपने आपको सुमहान् रूपसे सुप्रतिष्ठित करने लगे और मनुष्य को बांधकर अपना स्वार्थ सिद्धि करने लगे थे। इस अनादर्श वाद के समय अर्थात् करना कुछ भी नहीं है, केवल युक्तिवाद के द्वारा मनुष्यों से समर्थन प्राप्त करना है, इस राष्ट्रबिप्लव के समय मुनियोंने बहुमत संग्रह करनेके लिए निश्चय किया और अलौकिक रीतिसे चुनाव प्रथा शुरू हुई। इस समय एकमात्र श्रीहरिकी ही चुनावमें जीत हुई और सब हार गए। इस समयसे ही मूर्त्तिपूजा की प्रथा चली।

अकृत्रिम परहितकर गुण सम्पन्न व्यक्ति को सम्मान देना ही पूजा है, इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह ही प्रधान पुष्प होते हैं, इसके बिना समस्त उपचार सेव्य को दुःखी बनाते हैं।

जिस पदार्थ का नाम है, उसका स्वरूप भी सुनिश्चित है, विश्वस्रष्टा निश्चित गुणनामधेय से विभूषित हैं। आपकी मूर्त्ति उन नामसे ही सुनिश्चित है, शास्त्रकारगण उनसे उनकी मूर्त्तिका अङ्कन किए हैं, ईश्वर एक विभु होनेसे सर्वत्र अवस्थान की भांति निज प्रतिकृतिमें विराजित होते हैं, अतएव चित्रादि में उनकी पूजा करना प्रशस्तहै, पूजा करने के पहले श्रीगुरुपूजा की आवश्यकता है,

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं।

तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।। इस मन्त्रके द्वारा प्रणाम करके पूजा करें। **गुरुपूजा का मन्त्र-एते गन्धपुष्पे श्रीगुरवे नमः**, कहकर श्रीगुरुचरणों में चन्दनादियुक्त पुष्प प्रदान करे, श्रीगुरुदेव उपस्थित रहने से यथावत् चरण प्रक्षालन प्रभृति करना आवश्यक है, अनुपस्थित होने से '**एतत् पाद्यं श्रीगुरवे नमः**' कहकर जल अर्पण करें।

पञ्चोपचार से पूजा-

(१) गन्ध, (२) पुष्प, (३) धूप, (४) दीप, (५) नैवेद्य है, तुलसी भिन्न विष्णु की पूजा नहीं होती है, इस प्रकार अन्यान्य देवता की अर्चना में विहित पत्र पुष्प का विनियोग करना आवश्यक है।

उपचार के अभाव से मनसे ही उपचार अर्पण करे, पूजा के

पहले पञ्च पात्रादि स्थापन एवं संध्याकार्य करना आवश्यक है।

आचमन, तिलकधारण, पुनर्वार आचमन।

दक्षिण करतलमें जल लेकर **केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः**, कहकर मुखमें तीनबार जलनिःक्षेप करे, गोविन्दाय नमः कहकर दक्षिणहस्त, **विष्णवे नमः** कहकर वामहस्तका प्रक्षालन करे। तिलक नियम-उपास्यके सन्तोषार्थ उपासक तिलकधारण करे, शिखा बन्धन के बाद ललाटादि द्वादश स्थान में यथाविधि तिलक रचना करे।

१ ललाटे '**केशवाय नमः**' २ उदरे '**नारायणाय नमः**' ३ वक्षस्थलमें '**माधवाय नमः**' ४ कण्ठकूपमें '**गोविन्दाय नमः**' ५ दक्षिणकुक्षि में '**विष्णवे नमः**' ६ दक्षिण बाहुमें '**मधुसूदनाय नमः**' ७ दक्षिणकन्धर में '**त्रिविक्रमाय नमः**' ८ वाम पार्श्व में '**वामनाय नमः**' ९ वामबाहुमें '**श्रीधराय नमः**' १० वाम कन्धरमें '**हृषिकेशाय नमः**' ११ पृष्ठमें 'पद्मनाभाय नमः' १२ कटिदेशमें, 'दामोदराय नमः'। **वासुदेवाय नमः** कहकर तिलक प्रक्षालन जलका प्रक्षेप मस्तकमें करें।

सर्वार्थ सिद्धिके लिए मस्तक में किरीट मन्त्र का न्यास करे, बृद्धांगुष्ठ को अनामिका में संलग्न करके ब्रह्मरन्ध्र में स्थापन कर किरीट मन्त्रका स्मरण करना होता है, इसको न्यास कहते हैं। किरीट मन्त्र-**ॐ श्री किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलचक्रशङ्खगदापद्महस्तपीताम्बर-धरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योति-दीप्तिकराय सहस्त्रादित्यतेजसे नमो नमः।।**

पञ्चापात्र स्थापन -

जलसे त्रिकोण मण्डल अंकन करे। **कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, आधार शक्तये नमः**, मन्त्र से तीन कोण में बिन्दु जल देकर पूजा करे, मध्यमें इष्टदेवका नाम चतुर्थ्यन्त करके नमः शब्द योगसे उच्चारण कर अर्चना करे- **शिवाय नमः, कृष्णाय नमः, इत्यादि**। उसके ऊपर पञ्चपात्र स्थापन करे। उसके बाद अंकुश मुद्राके द्वारा जल आड़ोलन करने की चिन्ता मनमें करे। जल स्पर्श न करे।

मन्त्र-**गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।**

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

उसके बाद पञ्चपात्रके ऊपर दशवार मूलमन्त्र का जप करे। **तर्पण**-पितृन तर्पयामि, देवान् तर्पयामि, ऋषीन् तर्पयामि, गुरु-परम्परास्तर्पयामि, इस प्रकार कहकर एक एक बिन्दु जल द्वारा तर्पण कार्य करे' आब्रह्म स्तम्व पर्यन्तम् जगत् तृप्यतु मन्त्रसे समस्त विश्व की तृप्ति की चिन्ता करे। उसके बाद दशवार अथवा एक सौ आठ बार गायत्री जप कर जप समर्पण करे। निज मस्तक में दशवार अथवा एक सौ आठबार गुरुबीज के बीजमन्त्र का जप कर समर्पण करे। जप समर्पण मन्त्र-**गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव तत् प्रसादात् त्वयिस्थिते।।** अर्थचिन्ता करके मन्त्र जप करने से मन्त्रसिद्धि होती है। अर्थ की धारण होती है चित्तकी निर्मलतासे एवं श्रवणादि साधनासे। हरे कृष्ण नामका अर्थ सम्बोधन है भावके अनुसार सम्बोधन होता है, **हरि, कृष्ण, राम, शिव, दुर्गा, विष्णु, सूर्य, गणेश** आदि प्रियनाम का जप भी भावपूर्ण हृदयसे होता है। प्राणीमात्रके हितमें रत होने से ही नाम ग्रहण की योग्यता होती है, अपराध से मुक्त होने के लिए तृणसे भी अपने को नीच मानकर सम्मान की आकांक्षा को छोड़कर सबको परमात्मदृष्टि से सम्मान देकर ही श्रीहरिनाम ग्रहण करे, निरभिमानी होना परमावश्यक है।

मूलमन्त्र का अर्थ है-आत्म समर्पण करना। इष्टके स्वरूप ध्यान करके उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर रहा हूँ, इस प्रकार चिन्ता करके मन्त्रका जप करे।

आरति – सन्ध्याकार्य सम्पन्न करके अथवा उसके पहले घण्टा बजाकर पूज्य विग्रहका जागरण करे, आचमन, मुखप्रक्षालन, मार्जन वस्त्र दिखाकर घण्टावाद्य के साथ आरति करे। श्रीनाम उच्चारण करके नीराजन-आरति करना विहित है, १ धूप, २ दीप, ३ जलपूर्ण शङ्ख, ४ स्वच्छ वस्त्रखण्ड, ५ चामर वीजन द्वारा क्रमशः आरति कार्य होता है, उसके बाद प्रणति करना भी आरतिका अङ्ग है।

आरति करनेका नियम - धूपदीप श्रीचरणों में दक्षिणावर्त्त रूपसे चारबार, मध्य अंगमें दोबार, श्रीमुखकमल में तीन बार घुमाकर मस्तक से चरण पर्यन्त दक्षिणावर्त्तसे सातबार घुमाकर आरति करे एवं चामर व्यजन करे, पुष्पांजलि देनेकी भी विधि है, अवशेषमें प्रणाम करे, उसके बाद शयन कराया जाता है, अपरान्ह में जगाकर आचमन नैवेद्यादि साध्यानुरूप अर्पण करके श्रीग्रन्थपाठ एवं श्रवण आवश्यक है।

पूजा - इष्टदेवता के सम्मानार्थ प्रियवस्तु प्रदान करना ही पूजा है, पहले जलसे त्रिकोण मण्डल अंकन करके उसके ऊपर शङ्ख स्थापन करे, उसमें गन्धपुष्प देकर दशबार मूलमन्त्रका जप करे, बादमें उससे कुछ जल लेकर तर्पण पात्र में डाले, कुछ जल से पूजन सामग्री में छिटा दें। पुनर्बार गन्धपुष्प एवं जलसे शंखको पूर्ण करे। मूलमन्त्रका आठ बार जप करके शुद्ध शङ्खोदकसे निम्नोक्त मन्त्रको पढ़कर घण्टा को बजाकर स्नान करावें। **परमानन्दवोधाब्धि निमग्ननिजमूर्त्तये।**

स्वाङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते।।

आसन शुद्धि -एते गन्धपुष्पे ॐ आधारशक्तये नमः, मन्त्र से आसनकी पूजा करके आसनका स्पर्श करके-**आसन मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्द कूर्मोदेवता आसनाभिमन्त्रेन विनियोगः। पृथ्वित्वया धृतालोका देवि त्वं विष्णुना धृता त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं आसनं कुरु,** इस मन्त्रसे आसनको अभिमन्त्रित करके उसपर बैठे, पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख ही प्रशस्त है। श्रीमूर्त्तिको सामने अथवा बांये और रखकर बैठे।

श्रीमन्दिर में पूजा करना हो तो मन ही मन गुरुदेवसे आज्ञा ग्रहण करके 'एते गन्धपुष्पे द्वारदेवतागणोभ्यो नमः' कहकर द्वारदेवताकी पूजा करें, बादमें चौखट में पैर न लगे इस तरह मन्दिर में प्रवेश करें, पश्चात् भूतशुद्धि करें, निज स्वरूपका ध्यान करने से भूतशुद्धि होती है, अपवित्र अथवा अपनेको हीन मानकर देवता की पूजा नहीं होती है, शरीर में श्रेष्ठत्व बुद्धि लेकर भी देवता की पूजा नहीं होती है अतएव भूतशुद्धि की

आवश्यकता है। **भूतशुद्धि-'रं'** बीज का स्मरण करके अपने को जलकी धारासे वेष्टन करे, मैं अग्निमय दीवार के बीच में हूँ ऐसी चिन्ता करे। कर कच्छपिका मुद्रायुक्त होकर सोहं मन्त्र का उच्चारण एवं अर्थ की भावना करके हृदयस्थ जीवात्माको मस्तकमें सहस्रदल पद्म स्थित परमात्मा के साथ युक्त करे। अपने को शुद्धमुक्त मानकर देहस्थ पञ्चभूत अहंकार में लीन हुआ, इन्द्रियगण, बुद्धि राजस अहंकारमें, अधिष्ठाता देवतागण, मन, सात्विक अहंकारमें, अहंकार महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्व प्रकृतिमें विलीन है, वैसी चिन्ता करे, नाभिस्थ वायुके द्वारा दक्षिण कुक्षिस्थित पाप पुरुष शुष्क हुआ एवं हृदयस्थित वह्नि के द्वारा दग्ध हुआ ऐसी भावना करे, अनन्तर सहस्रार पद्मस्थित सम्पूर्ण चन्द्रमण्डलसे विगलित अमृतमयी मातृका वर्णमयी धारासे भस्मीभूत देह धौत हुआ, उसके बाद सेवोपयोगी देहको देखे, बादमें प्रणव उच्चारण करके इष्टदेवका ध्यान करे। सम्भव होने पर **रेचक-पूरक-कुम्भक** के द्वारा प्रणायाम करे, इष्टमन्त्र के ऋष्यादि का स्मरण करे। **ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, अधिष्ठात्री देवता** का स्मरण ही ऋष्यादि स्मरण है।

इष्टदेव की वामपार्श्वमें श्रीसमष्टि गुरुतत्त्वका स्थान है, यहाँ पर "**एते गन्धपुष्पे श्रीगुरवे नमः**" कहकर श्रीगुरु पूजा करे, बादमें **एते गन्धपुष्पे श्रीशिवाय नमः** कहकर पूजा करे, निज निज इष्ट देवके नामोच्चारण करके नाममें चतुर्थी विभक्ति देकर अन्तमें नमः शब्द को जोड़कर पूजादि करे, चतुर्थी विभक्ति, तथा नमः शब्दके योगसे मन्त्र होता है, जैसे **शिवाय नमः, विष्णवे नमः**, धूप दीप नैवेद्यार्पण भी उक्त मन्त्र से होता है।

अर्पण मन्त्र - एतद् नैवेद्यं श्रीशिवाय नमः, इदम् पानीयोदकम् श्रीशिवाय नमः, इदम् आचमनीयम् श्रीशिवाय नमः, इष्ट देव को अर्चना के बाद गन्ध पुष्प के द्वारा तुलसी की पूजा, चारबार प्रणाम, प्रदक्षिणा करे।

अथ श्रीतुलसीवनपूजा-

प्राग्दत्त्वार्घ्यं ततोभ्यर्च्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिना।
स्तुत्वा भगवतीं ताञ्च प्रणमेत् प्रार्थ्य दण्डवत्।।

अनन्तर तुलसी वनकी पूजा इस प्रकार है, – प्रथम अर्घ्य प्रदान करके गन्धपुष्प अक्षत के द्वारा पूजन करे, अनन्तर स्तव करके दण्डवत् प्रणाम करे।

अर्घ्य मन्त्रः – श्रियः श्रिये श्रियावासे नित्यं श्रीधरसत्कृते।
भक्त्या दत्तं मया देवि अर्घ्य गृहण नमोऽस्तु ते।।

श्रीधरके द्वारा सम्मानित निखिल ऐश्वर्य स्वरूपिणी देवि तुलसी! अर्घ्य ग्रहण करें मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

पूजामन्त्र :– निर्म्मिता त्वं पुरा देवैरर्चिता त्वं सुरासुरैः।
तुलसी हर मे पापं पूजां गृहण नमोऽस्तु ते।।

सुप्राचीन कालमें सुरासुर देवतावर्गों ने स्थापन एवं पूजन आपका किया है। हे तुलसि मेरा पाप हरो, और पूजा ग्रहण करो, मैं प्रणाम करता हूँ।

स्तुति– महाप्रसाद जननी सर्व सौभाग्य वर्द्धिनी।
आधिव्याधि हरी नित्यं तुलसि त्वं नमोऽस्तु ते।।

महाप्रसाद जननी, सर्वसौभाग्य वर्द्धिनी, आधि व्याधि नाशकारिणी आप हो, हे तुलसी आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

प्रार्थना – श्रियं देहि यशो देहि कीर्त्तिमायुस्तथा सुखम्।
बलं पुष्टिं तथा धर्मं तुलसि त्वं प्रसीद में।।

हे तुलसि धन, यश, कीर्त्ति, आयु, बल, पुष्टि तथा धर्म प्रदान करे, मेरे प्रति प्रसन्न हो। **प्रणाम वाक्य अवन्ती खण्डमें**–

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी।
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्ति विधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति फलदातस्यै तुलस्यै नमः।।

निखिल पापोंका नाश दर्शनसे होता है, स्पर्श से शरीर पवित्र होता है, जल प्रदानसे मृत्युभय मिट जाता है। रोपण करने पर श्रीकृष्णके साथ विशेष सम्बन्ध स्थापन होता है। श्रीकृष्णचरण में अर्पण करने पर तुलसी मुक्तिदान करती है, ऐसी तुलसीको मैं नमस्कार करता हूँ।

तुलसी वन पूजन माहात्म्य, स्कन्द पुराणमें वर्णित है-

श्रवणद्वादशी योगे शालग्रामशिलार्चने।
यत्फलं सङ्गमे प्रोक्तं तुलसी पूजनेन तत्।।

श्रवणा द्वादशी में शालग्राम की अर्चनासे जो फल प्राप्त होता है, तुलसी पूजन से भी वही फल मिलता है।

गरुड़ पुराणमें भी उक्त है-

धात्रीफलेन यत् पुण्यं जयन्त्यां समुपोषणे।
खगेन्द्र भवने नृणां तुलसी पूजनेन् तत्।।
प्रयागस्ताननिरतौ काश्यां प्राणविमोक्षणे।
यत्फलं विहितं ये वैस्तुलसी पूजनेन तत्।।

आमलकी सेवन से एवं जन्माष्टमी में, जयन्ती महाद्वादशी रोहिणी नक्षत्रयुक्ता द्वादशीमें उपवास करने से जो फल विहित है, तुलसी पूजनसे भी वही फल मिलता है, काशी में प्राणत्याग करनेपर, प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल होता है, तुलसी पूजनसे भी वही फल होता है।

अगस्त्य संहिता में वर्णित है-

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणाञ्च पूजितेष्टं ददाति हि।।
तुलसी रोपिता सिक्ता स्पृष्टा च पावयेत्।
आराधिता प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदा।।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यशूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्न्यासी सबके लिए ही तुलसी पूज्या है, और अभीष्ट फलदाता है। रोपण, जलसेचन, दर्शन, स्पर्शसे तुलसी पवित्र करती है, यत्नपूर्वक आराधना करने से सकल कामना प्रदान करती है।

और भी – प्रदक्षिणं भ्रमित्वा ये नमस्कुर्वन्ति नित्यशः।
न तेषां दुरितं किञ्चिदक्षीणमवशिष्यते।।

परिक्रमा करके जो व्यक्ति तुलसी को प्रणाम करता है, उसका सकल पाप विनष्ट होता है।

वृहन्नारदीयमें लिखित है- पूज्यमाना च तुलसी यस्य वेशमनितिष्ठति।

तस्य सर्वाणि श्रेयांसि वर्द्धन्ते अहरहर्द्विजाः।।

जिसके घरमें तुलसी नित्य पूजिता होती है, उसका कल्याण सर्वदा होता है। अतएव पद्मपुराणमें देवदूत विकुण्डल संवादमें वर्णित है-

पक्षे पक्षे तु संप्राप्ते द्वादश्यां वैश्य सत्तम।

ब्रह्मादयोऽपि कुर्वन्ति तुलसीवन पूजनम्।।

हे वैश्य सत्तम ! ब्रह्मादि देवतागणभी प्रत्येक द्वादशीमें तुलसी वनकी पूजा करते हैं। अतएव श्रीतुलसी स्तुतिकी महिमा इस प्रकार कथित है-

अनन्य मनसा नित्यं तुलसीं स्तौति यो नरः।

पितृ-देव-मनुष्याणां प्रियो भवति सर्वदा।।

एकाग्र मनसे जो जन तुलसी की स्तुति नित्य करता है, वह व्यक्ति पितृ देव मनुष्यों के सर्वदा प्रिय होता है।

स्कन्द पुराणमें तुलसी का माहात्म्य वर्णित है-

रतिं वध्नाति नान्यत्र तुलसी काननं विना।
देवदेवो जगत्स्वामी कलिकाले विशेषतः।।
हित्वातीर्थ सहस्राणि सर्वानपि शिलोच्चयान्।
तुलसी कानने नित्यं कलौ तिष्ठति केशवः।।
निरीक्षिता नरैर्यस्तु तुलसीवन-वाटिका।
रोपिता यैश्च विधिना सम्प्राप्तं परमं पदम्।।
न धात्री सफला यत्र न विष्णुस्तुलसीवनम्।
तत् श्मशानसमं स्थानं सन्ति यत्र न वैष्णवाः।।
केशवार्थे कलौ येतु रोपयन्तीह भूतले।
किं करिष्यत्यसन्तुष्टो यमोऽपि सहकिङ्करैः।।
तुलस्या रोपणं कार्यं श्रवणेन विशेषतः।
अपराधसहस्राणि क्षमते पुरुषोत्तमः।।
देवालयेषु सर्वेषु पुण्यक्षेत्रेषु यो नरः।
वापयेत्तुलसीं पुण्यां तत्तीर्थं चक्रपाणिनः।।

घटैर्यन्त्रघटीभिश्च सिञ्चितं तुलसीवनम्।
जलधाराभिर्विप्रेन्द्र प्रीणितं भुवनत्रयम्।।

स्कन्द पुराणमें तुलसी काननका माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है- कलिकालमें जगत्स्वामी देवदेव तुलसी काननको छोड़कर अन्यत्र प्रीति नहीं करते हैं। कलिकालमें श्रीभगवान् केशव हजारों तीर्थोंको छोड़कर नित्य ही तुलसी काननमें निवास करते हैं। जिस व्यक्ति ने तुलसीवनका निरीक्षण किया, रोपण किया, वह परमपद को प्राप्त करेगा। जहां पर सफलाधात्री, विष्णुमूर्त्ति, तुलसी एवं वैष्णव नहीं है वह स्थान श्मशान तुल्य है। श्रीकेशवकी सेवा हेतु जो व्यकित तुलसी रोपण करता है, समस्त किंकरों के साथ स्वयं यमराज असन्तुष्ट होकर उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते हैं। विशेषकर श्रवणानक्षत्रमें तुलसी रोपण करनेसे सहस्र अपराध भगवान् पुरुषोत्तम क्षमा करते हैं। सकल देवालय आदि पुण्य क्षेत्रोंमें जो व्यक्ति तुलसी रोपण करता है, वह क्षेत्र भगवान् चक्रपाणि का पुण्यतीर्थ बनता है। घट घटी यन्त्र एवं जलधाराके द्वारा तुलसी वनको सिञ्चित करने से तीन लोकों को तृप्त करनेका फल मिलता है।

स्कन्द पुराण के श्रीब्रह्मानारद संवादमें कथित है-

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
दिशोदश च पूताः स्यु-र्भूतग्राम-श्चतुर्विधः।।
तुलसीकाननोद्भूता छाया यत्र भवेद् द्विज।
तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितृणां तृप्तिहेतवे।।
तुलसीबीजनिकरः पतते यत्र नारद।
पिण्डदानं कृतं तत्र पितृणां दत्तमक्षयम्।।

समीरण तुलसीवन की गन्धको लेकर जहाँपर चलती है दशदिक् एवं भूतसमूह वहाँके पवित्र होते हैं। तुलसीकी छाया जहाँ पड़ती है, वहाँपर पितृपुरुषों की तृप्तिहेतु श्राद्धकर्म करे। हे नारद! जहाँ पर तुलसी बीज पड़ते हैं, वहाँ पर ही पितृपुरुष की तृप्तिके हेतु श्राद्धकर्म करे, वह कर्म अक्षय होता है।

आगे और भी कहा है-

दृष्टा स्पृष्टा तथाध्याताकीर्त्तिता नमिताश्रुता।
रोपितासेविता नित्यं पूजितातुलसी शुभा।।
नवधा तुलसी नित्यं ये भजन्ति दिने दिने।
युगकोटि सहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे।।
रोपिता तुलसी यावत् कुरुते मूलविस्तरम्।
तावत् कोटि सहस्रान्तु तनोति सुकृतं कलौ।।
यावच्छाखा प्रशाखाभिर्वीजपुष्पैः फलैर्मुने।
रोपितातुलसी पुम्भिर्वर्द्धते वसुधातले।।
कुले तेषान्तु ये भविष्यन्ति ये मृताः।
आकल्पं युगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे।।

दर्शन, स्पर्श, नमन, ध्यान, कीर्त्तन, श्रवण, सेवन, पूजन से तुलसी नित्य शुभफल प्रदान करती है। नव प्रकारसे जो जन प्रतिदिन तुलसी की सेवा करता है, वह कोटि सहस्र युगतक हरिके घरमें वास करता है। रोपिता तुलसी जितनी जड़को फैलती है, उतने कोटि सहस्र काल तक कलियुगमें पुण्यका विस्तार करती है। जितनी शाखा प्रशाखा बीज पुष्प फलके द्वारा तुलसी बड़ती रहती है, उतने काल तक तुलसी रोपणकारी व्यक्ति के कुलमें भूत भविष्यत और वर्तमान काल में उत्पन्न व्यक्तिगण श्रीहरिके घरमें निवास करेंगे।

स्कन्द पुराणके अवन्ती खण्डमें उक्त है-

तुलसी ये विचिन्वन्ति धन्यास्तत्करपल्लवाः।
केशवार्थे कलौ येच रोपयन्तीह भूतले।।
स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्च्चने।
तुलसी दहते पापं रोपणे कीर्त्तने कलौ।।

जो व्यक्ति तुलसी चयन करता है, उसका हाथ पवित्र होता है और श्रीकेशव के लिए जो जन कलियुगमें तुलसी रोपण करता है उसका हाथ भी पवित्र होता है। **काशीखण्डमें यमदूतके प्रति श्रीयमराज का अनुशासन भी इस प्रकार है-**

तुलस्यालङ्कृता ये ये तुलसीनाम जापकाः।
तुलसीवनपाला ये ते त्याज्या दुरतो भटाः।।

हे भटगण ! सुनो, जोजन तुलसी से भूषित है, तुलसी का जप भी करता है, अथवा तुलसीवन का रक्षणावेक्षण करता है, उसको दूरसे ही छोड़ देना। **ध्रुव चरित्र में वर्णित है-**

तुलसी यस्य भवने प्रत्यहं परिपूज्यते।
तद्गृहं नोपसर्पन्ति कदाचित् यमकिङ्कराः।।

जिसके घरमें नित्य तुलसी की सेवा होती है, उसके घर को यम किङ्करगण नहीं जाते हैं। **पद्मपुराण के देवदूत विकुण्डल संवाद में वर्णित है-** न पश्यन्ति यमं वैश्य तुलसीवन-रोपणात्।
सर्वपापहरं सर्वकामदं तुलसीवनम्।।
तुलसीकाननं वैश्य गृहे यस्मिँस्तु तिष्ठते।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि नो यान्ति यमकिङ्कराः।।
तावद्वर्ष सहस्राणि यावद्बीजदलानि च।
वसन्ति देवलोके तु तुलसीं रोपयन्ति ये।।
तुलसी गन्धमाघ्राय पितरस्तुष्ट-मानसाः।
प्रयान्ति गरुड़ारूढ़ास्तत्पदं चक्रपाणिनः।।
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं विशांवर।
तुलसीदलसंस्पर्शः सममेतत्त्रय स्मृतम्।।
रोपणात् पालनात् सेकात् दर्शनात् स्पर्शनान्नृणाम्।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनकाय सञ्चितम्।।
आम्रवृक्ष सहस्रेण पिप्पलानां शतेन च।
यत्फलं हि तदेकेन तुलसी विटपेन तु।।
विष्णुपूजनसंयुक्तस्तुलसीं यस्तु रोपयेत्।
युगायुतदशैकं स रोपको रमते दिवि।।

तुलसीवन सकल पाप हरणकारी एवं निखिल कामना पूर्तिकारक है, तुलसीवृक्ष के रोपणसे यमलोक का दर्शन नहीं होता है, जिसके घरमें

तुलसी कानन है, उसका घरही तीर्थस्वरूप होता है, यमराजके किङ्करगण उस घर को कभी नहीं जाते हैं। जो जन तुलसी रोपण करता है, वह तुलसी वृक्षके फल पत्रकी संख्याके अनुसार देवलोकमें निवास करता है, तुलसी गन्ध प्राप्तकर पितृ पुरुषगण सन्तुष्ट होकर गरुड़ वाहनसे चक्रपाणिके समीप को जाते हैं। नर्मदाका दर्शन एवं गंगास्नान, तुलसीदल स्पर्श तीनों ही एक जैसे हैं। रोपणसे, पालनसे, जलसेकसे, दर्शन एवं स्पर्शसे तुलसी मनुष्यके कायिक, वाचिक, मानसिक पापों को विनष्ट कर देती हैं। सहस्र आम्रवृक्ष से, पिप्पल के शतवृक्षसे जो फल होता है एक तुलसी वृक्ष रोपण से ही वह फल होता है। विष्णु पूजन के साथ यदि कोई व्यक्ति तुलसी रोपण करता है तो वह सहस्रयुग स्वर्गमें सुख का भोग करता है।

पद्म पुराणके वैशाख माहात्म्य वर्णनमें लिखित है-

पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले।।
दारिद्र्य दुःखरोगार्त्ति पापानि सुबहून्यपि।
तुलसी हरति क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी।।

तुलसी दलमें पुष्करादि तीर्थ समूह एवं गङ्गादि नदी समूह वासुदेवादि देवता समूह निवास करते हैं। हरीतकी जिस प्रकार सत्वर सब रोगों को नाश करती है, वैसेही दारिद्र्य, दुःख रोग, मानसी पीड़ा, अनेकानेक पाप समूह को तुलसी सत्वर नाश करती है।

वहाँ कार्तिक माहात्म्यमें वर्णित है-

यद्गृहे तुलसी भाति रक्षाभिर्जलसेचनैः।
तद्गृहं यमदूताश्च दूरतो वर्जयन्ति हि।।
तुलस्यास्तर्पणं येच सितृनुद्दिश्य मानवाः।
कुर्वन्ति तेषां पितरस्तृप्ता वर्षायुतं जलैः।।
परिचर्य्याञ्च तस्या रक्षयालवालबन्धनैः।
शुश्रूषितो हरिस्तैस्तु नात्रकार्य्या विचारणा।।

नावज्ञा जातु कार्यास्या वृक्षभाणान् मनीषिभिः।
यथाहि वासुदेवस्य वैकुण्ठे भोगविग्रहः।।
शालग्रामशिलारूपं स्थावरं भूवि दृश्यते।
तथा लक्ष्म्यैक्यमापन्ना तुलसी भोगविग्रहा।।
अपरं स्थावरं रूपं भुवि लोकहिताय वै।
स्पृष्टा दृष्टा रक्षिता च महापातकनाशिनी।।

जिसके घरमें तुलसी जलसेक, रक्षा प्रभृतिके द्वारा सुरक्षिता होती है, उस घर को यमदूतगण दूरसे वर्जन करते हैं। जो मानव, पितृपुरुषके उद्‌देश्यसे तर्पण करता है, पितृपुरुषगण भी उस मानवको सहस्र सहस्र वत्सर जल देखकर तृप्त करते रहते हैं। तुलसी परिचर्या से ही श्रीहरिकी परिचर्या होती है, इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्यगण वृक्षस्वभावापन्न तुलसी को देखकर कभी भी अवज्ञा न करे, जिस प्रकार वासुदेव के भोग विग्रह वैकुण्ठमें हैं, पृथिवी में शालग्राम शिलारूप में स्थावर होकर रहते हैं। उस प्रकार लक्ष्मीके साथ एकतापन्न होकर भोगविग्रह वैकुण्ठमें तुलसी रहती है, और स्थावर रूपमें भूमण्डल में विराजित है। लोकहित के लिए ही यह स्थावर रूप है। दर्शन, स्पर्श, रक्षणावेक्षणसे महापातक नाश करती है।

अगस्त्य संहितामें उक्त है–

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैक पावनी।।
तुलसी वाटिका यत्र पुष्पान्तर शतावृता।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम्।।
तुलसी विपिनस्यापि समन्तात् पावनं स्थलम्।
क्रोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयस्यैव पाथस।।
तुलसी सन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर।
न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमं पदम्।।
अनन्यदर्शनाः प्रातर्ये पश्यन्ति तपोधन।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणात् प्रहरन्ति ते।।

त्रैलोक्यनाथ विष्णु को जनकात्मजा सीता जिस प्रकार प्रिया हैं, सर्वलोक पावनी तुलसी भी रामजी की वैसी प्रिया हैं। पुष्प कानन में जहाँपर तुलसी होती है, सीता के साथ राघव स्वयं वहां पर रहते हैं। तुलसी विपिन तो पूज्य होता है, उसके सान्निध्य की भूमि भी पवित्र होती है, जिस प्रकार गंगा एवं उसके सम्बन्धितीर भूमिकी पवित्रता होती है। तुलसीके सान्निध्य में प्राणत्याग करनेपर नरक-क्लेश नहीं होता है, परमपद की प्राप्ति होती है। प्रातःकाल में अन्य दर्शन न कर तुलसी दर्शन करने पर अहोरात्र कृत पाप समूह विनष्ट होते हैं। **गरुड़ पुराणमें उक्त है-**

कृतं येन महाभाग तुलसीवन-रोपणम्।
मुक्तिस्तेन भवेद्दत्ता प्राणिनां विनतासुत।।
तुलसी वापिता येन पुण्यारामे वनेगृहे।
पक्षीन्द्र तेन सत्योक्तं लोकाः सप्त प्रतिष्ठिताः।।
तुलसी कानने यस्तु मुहूर्त्तमपि विश्रमेत्।
जन्मकोटिकृतान् पापान् मुच्यते नात्र संशयः।।
प्रदक्षिणं यः कुरुते पठन्नामसहस्रकम्।
तुलसी कानने नित्यं यज्ञायुतफलं लभेत्।।

जिस व्यक्ति से तुलसीवन का निर्माण होता है, उससे ही जीवों की मुक्ति होती है, पुण्योपवन में अथवा घरमें जो जन तुलसी वृक्ष रोपण करता है, वहाँ पर सप्तलोक प्रतिष्ठित होते हैं। जो जन तुलसी काननमें मुहूर्त्त के लिए विश्राम करता है, वह कोटिजन्म कृत पापोंसे मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है। तुलसी काननमें सहस्रनाम पाठ एवं तुलसी की परिक्रमा जो जन करता है, वह हजारों यज्ञों के फलभागी बनता है।

हरिभक्ति सुधोदयमें वर्णित है-

नित्यं सन्निहितो विष्णु सस्पृहस्तुलसीवने।
अपि मेऽक्षतपत्रैकं कश्चिद्धन्योऽर्पयेदिति।।

श्रीविष्णु उत्सुकता के साथ नित्य तुलसीवन में निवास करते हैं, ताकि कोई धन्य व्यक्ति एकपत्र तुलसी उन्हें अर्पण करे।

वृहन्नारदीय पुराणके गङ्गा प्रसङ्गमें वर्णित है-

संसारपापविच्छेदि गङ्गानाम-प्रकीर्त्तितम्।
तथा तुलस्या भक्तिश्च हरि कीर्त्ति प्रवक्तरि।।
तुलसी काननं यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।।

गङ्गा नाम पाप विनाशक जिस प्रकार है, उस प्रकार तुलसीभक्ति एवं श्रीहरि के गुणगान करने वाले के प्रति भक्ति भी संसार पाप नाशक हैं। जहां तुलसी कानन एवं पद्मवन है, जहां पुराण ग्रन्थ का पाठ होता है, वहां पर श्रीहरि निवास करते हैं।

वृहन्नारदीय पुराणके श्रीयम भगीरथ संवादमें उक्त है-

तुलसीरोपणं ये तु कुर्वत मनुजेश्वर!
तेषां पुण्यफलं वक्ष्ये वदतस्त्वं निशामय।।
सप्तकोटिकुलैर्युक्तो मातृतः पितृतस्तथा।
वसेत् कल्पशतं साग्रं नारायणसमीपगः।।
तृणानि तुलसीमूलात् यावन्त्यपहिनोति वै।
तावतीर्ब्रह्महत्या हि छिनत्येव न संशयः।।
तुलस्यां सिञ्चयेद् यस्तु चुलुकोदकमात्रकम्।
क्षीरोदशायिना सार्द्धं वसेदाचन्द्रतारकम्।।
कण्टकावरणं वापि वृतिं काष्ठैः करोति यः।
तुलस्याः शृणु राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं महत्।।
यावद्दिनानि सन्तिष्ठेत् कण्टकावरणं प्रभो।
कुलत्रययुतस्तावत् तिष्ठेत् ब्रह्मपदे युगम्।
प्राकार कल्पको यस्तु तुलस्या मनुजेश्वर!
कुलत्रयेण सहितो विष्णोः सारूप्यतां ब्रजेत्।।

जो जन तुलसी रोपण करता है, उसके पुण्यफल को कहता हूँ, सुनो, वह सातकरोड़ मातापिताके कुलके साथ शतकल्प कालतक श्रीनारायणके समीपमें अग्रभागमें निवास करेगा। जो जन, तुलसीके मूलसे तृणों को साफ करता है, उतने परिमाण में उसके ब्रह्महत्यापाप

विनष्ट होते हैं। चुलुकभर जलसे भी जो जन तुलसीका सिञ्चन करता है, वह व्यक्ति चन्द्रतारका जबतक रहेंगे तबतक क्षीरोदशायि के साथ निवास करेगा। जो जन तुलसी का घेराका निर्माण कण्टक के द्वारा करता है, वह एक युगतक ब्रह्मधाममें निवास करेगा, जो जन दीवारों से तुलसी की रक्षा व्यवस्था करता है, वह तीन कुलों के साथ विष्णु सारूप्यको प्राप्त करता है। **वृहन्नारदीय के यज्ञध्वजके उपाख्यानमें वर्णित है-**

दुर्ल्लभातुलसी सेवा दुर्लभा सङ्गतिः सताम्।
दुर्लभा हरिभक्तिश्च संसारार्णवपातिनाम।।

संसार सागरमें पतित व्यक्ति के लिए तुलसी सेवा दुर्लभ है, सत्संगति भी दुर्लभ है, हरिभक्ति भी दुर्लभ है। **पुराणान्तर में कहा गया है-**

यत्फलं क्रतुभिः स्विष्टैः समाप्तवरदक्षिणैः।
तत् फलं कोटिगुणितं रोपयित्वा हरेः प्रियाम्।।
तुलसीं ये प्रयच्छन्ति सुराणामर्चनाय वै।
रोपयन्ति शुचौदेशे तेषां लोकोऽक्षयः स्मृतः।।
रोपितां तुलसीं दृष्ट्वा नरेण भूमि भूमिप!
विवर्णवदनो भूत्वा तल्लिपिं मार्जयेद् यमः।।
तुलसीनिचयो ब्रूयात् त्रिकालं वदने यदि।
नित्यं स गो सहस्रस्य फलमाप्नोति भूसुर!
तेन दत्तं हुतं जप्तं कृतं श्राद्धं गयाशिरे।
तपस्तप्तं खगश्रेष्ठ तुलसी येन रोपिता।।
श्रुताभिलषिता दृष्टा रोपिता सिञ्चिता नता।
तुलसी दहते पाप युगान्ताग्निरिवाखिलम्।।
केशवायतने यस्तु कारयेत् तुलसीवनम्।
लभते चाक्षयं स्थानं पितृभिः सहवैष्णवैः।।

दक्षिणाके साथ यज्ञकर्म समापन करनेसे जो फल होता है, तुलसी रोपण से उसका क्रोड़गुण फल अधिक होता है। देवार्चना हेतु जो जन पवित्र भूमिमें तुलसी रोपण करता है, वह अक्षयलोक का निवासी होता है। तुलसी रोपणकारी मानव को देखकर यमराज विवर्ण वदन

होकर उसके लेखाजोखाको मिटादेते हैं। त्रिकाल यदि कोई व्यक्ति तुलसीनाम उच्चारण करता है, तो वह गो सहस्रदानका फल प्राप्त करता है। जिसने तुलसी रोपण किया है, उसके दान, जप, गयाश्राद्ध, तपस्याकर्म सब सम्पन्न होते हैं। श्रवण, चाह दर्शन, रोपण, जलसेचन, नमन से तुलसी प्रलयाग्निके समान अखिलापापों को नाश करती है। केशवायतनमें जो व्यक्ति तुलसीवन करता है वह वैष्णव निज पितृपुरुषोंके साथ अक्षयस्थान का निवासी होता है। **अन्यत्र भी कथित है-**

तुलसी कानने श्राद्धं पितृणां कुरुते च यः।
गयाश्राद्धं कृतं तेन विष्णुना भाषितं पुरा।।
तुलसीगहनं दृष्ट्वा विमुक्तो याति पातकात्।
सर्वथा मुनि शार्दुल ब्रह्महा पुण्यभाग् भवेत्।।

जो जन, तुलसी वनमें पितृश्राद्ध करता है, श्रीविष्णुके कथन से उससे उसका गयाश्राद्ध निष्पन्न होता है, तुलसी काननको देखकर निखिल पातकसे मानव मुक्त होता है और ब्रह्महाभी पुण्यवान् होता है।

स्कन्द पुराण वशिष्ठ मान्धाताके संवादसे ज्ञात होता है कि-

शुक्लपक्षे यदा राजन् तृतीया बुधसंयुता।
श्रवणेन महाभाग तुलसी याति पुण्यदा।।

शुक्लपक्ष, बुधवार तृतीया में श्रवणाके योगसे तुलसी सेवन हितकर होता है।

श्रीतुलसी मृत्तिका-काष्ठादि माहात्म्य-

स्कन्द पुराणके ब्रह्म नारद संवादमें उक्त है-

भूगतैस्तुलसीमूलैर्मृत्तिका स्पर्शिता तु या।
तीर्थकोटि समा ज्ञेया धार्य्या यत्नेन सा गृहे।।
यस्मिन् गृहे द्विजश्रेष्ठ तुलसी मूलमृत्तिका।
सर्वदा तिष्ठते देहे देवता न स मानवः।।
तुलसी मृत्तिका लिप्तो यदि प्राणान् परित्यजेत्।
यमेन नेक्षितुं शक्तो युक्तपापशतैरपि।।

शिरसि क्रियते यैस्तु तुलसीमूलमृत्तिका।
विघ्नानि तस्य नश्यन्ति सानुकूला ग्रहास्तथा।।
तुलसी मृत्तिका यत्र काष्ठं पत्रञ्च वेश्मनि।
तिष्ठते मुनि शार्दुल निश्चलं वैष्णवं पदम्।।

तुलसी मूलकी मृत्तिका कोटितीर्थके समान पवित्र होती है, उसको घरमें अति यत्नसे रखना चाहिये। जिसके घरमें तुलसीमूल की मृत्तिका रहती है, वह साक्षात् देवता होता है। तुलसी मृत्तिका लिप्त होकर यदि प्राणत्याग करता है, तो शत शत पापोंसे युक्त होने पर भी यमराज उसको देखनेमें समर्थ नहीं होते हैं। जो जन निज मस्तकमें तुलसी मूलकी मृत्तिका को धारण करता है, उसके सबविघ्न नष्ट हो जाते हैं, सब ग्रह भी अनुकूल बनते हैं। जिसके घरमें तुलसी मृत्तिका, काष्ठ एवं पत्र हैं, वह निश्चय ही विष्णुलोकके अधिकारी होता है। **अन्यत्रभी लिखित है-**

मङ्गलार्थञ्च दोषघ्नं पवित्रार्थं द्विजोत्तम।
तुलसीमूलसंलग्नां मृत्तिकामावहेद्बुधः।।
तन्मूलमृत्तिकां योवै कारयिष्यति मस्तके।
तस्य तुष्टो वशन् कामान् प्रददाति जनार्दनः।।

मंगलके लिए दोषनाश हेतु, पवित्र होने के लिए तुलसीमूलकी मृत्तिका को ही ग्रहण करे, तुलसीमूलकी मृत्तिका को जो जन मस्तक में धारण करता है, जनार्दन संतुष्ट होकर उसको अभीप्सित वरदान करते हैं। **वृहन्नारदीयमें वर्णित है-**

तुलसीमूलसम्भूता हरिभक्तिपदोद्भवा।
गङ्गोद्भवा च मृल्लेखा नयत्यच्युतरूपताम्।।

तुलसी मूलकी मृत्तिका, भक्तपदरेणु, गंगामृत्तिका, पवित्र है, उससे तिलक रचना श्रीविष्णु प्रीतिद होती हैं। **गरुड़ पुराणमें वर्णित है-**

यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथार्द्रकम्।
भवते नैव पापं तद्गृहे संक्रमते कलौ।।

जिसके घरमें तुलसी काष्ठ तुलसी पत्र रहते हैं, उसके घरमें कलिकाल के पाप का संक्रमण नहीं होता है।

श्रीप्रह्लाद संहिता एवं विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित है-

पत्रं पुष्पं फलं काष्ठं त्वक्शाखा पल्लवाङ्कुरम्।
तुलसी सम्भवं मूलं पावनं मृत्तिकाद्यपि।।
होमं कुर्वन्ति ये विप्रास्तुलसीकाष्ठवह्निना।
लवे लवे भवेत् पुण्यमग्निष्टोमशतोद्भवम्।।
नैवेद्यं पचते यस्तु तुलसीकाष्ठवह्निना।
मेरुतुल्यभवेदन्नं तद्दत्तं केशवायहि।।
शरीरं दह्यते येषां तुलसीकाष्ठबह्निना।
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात् कथञ्चन।।
ग्रस्तो यदि महापापैरगम्यागमनादिकैः।।
मृतः शुध्यति दाहेन तुलसीकाष्ठवह्निना।।
तीर्थं यदि न संप्राप्तं स्मृतिर्वा कीर्त्तनं हरेः।
तुलसीकाष्ठदग्धस्य मृतस्य न पुनर्भवः।।
यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठचयस्य हि।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः पापकोटि युतस्य च।।
जन्मकोटिसहस्रैस्तु तोषितो यै जनार्दनः।
दह्यन्ते ते जना लोके तुलसीकाष्ठवह्निना।।

पत्र, पुष्प, फल, काष्ठ, त्वक्, शाखा, पल्लव, अंकुर, तुलसी मूल एवं तुलसी मृत्तिका भी परम पावन है। जो व्यक्ति, तुलसीकाष्ठ वह्निके द्वारा होम करवाता है, वह लव लवमें शत अग्निष्ठोम का फल प्राप्त करता है। तुलसीकाष्ठ वह्निके द्वारा जो व्यक्ति श्रीहरिके निमित्त नैवेद्य पाक करता है, उसका वह नैवेद्य केशवके लिए सुमेरूतुल्य होता है। जिसका अन्तिम संस्कार तुलसीकाष्ठ वह्निसे होता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है, वह विष्णुलोक का निवासी होता है। यदि महापापों से भी युक्त हो तथापि तुलसीकाष्ठ बह्निसे अंतिम संस्कार होनेपर वह शुद्ध होता है। अन्तिम कालमें यदि तीर्थ, श्रीहरिस्मृति, श्रीहरि कीर्त्तन की सम्भावना नहीं होती है तो भी मृत व्यक्तिका दाह संस्कार तुलसी वह्निसे होनेपर उसका पुनरागमन नहीं होता है। दाह संस्कारके समय काष्ठ राशिमें यदि

स्वल्पभी तुलसीकाष्ठ हो तो कोटि पापयुक्त व्यक्तिका पुनरागमन नहीं होता है। जिसके जन्मकोटि सहस्र कृष्णजन्मदिनका भजन किया है, लोक उसका ही दाह संस्कार तुलसी काष्ठ वह्निसे करते हैं।

अगस्त्य संहितामें उक्त है-

य: कुर्यात्तुलसीकाष्ठैरक्षमालां सुरूपिणीम्।
कण्ठमालाञ्च यत्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत्।।

जो व्यक्ति 'जपमाला एवं कण्ठीमाला' तुलसी काष्ठसे निर्माण करके धारण करता है, उससे उसका अक्षण पुण्य होता है।

तुलसीपत्र धारण का माहात्म्य इस प्रकार है-

स्कन्द पुराण के श्रीब्रह्मनारद संवादमें वर्णित है-

यस्य नाभिस्थितं पत्रं मुखे शिरसि कर्णयो:।
तुलसीसम्भवं नित्यं तीर्थैस्तस्य मखैश्च किम्।।

जो व्यक्ति भगवत् प्रसादी तुलसीपत्र मुख मस्तक कर्णमें धारण करता है, उसका तीर्थभ्रमण, यज्ञादि कर्मसे प्रयोजन ही क्या है?

अन्यत्रभी वर्णित है- शत्रुघ्नञ्च सुपुण्यञ्च श्रीकरं रोगनाशनम्।
कृत्वा धर्ममवाप्नोति शिरसा तुलसीदलम्।।
य: कश्चिद्वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी।
पुनाति सकलांल्लोकान् शिरसातुलसीं वहन्।।

शत्रुनाशक, धनद, पुण्यद: रोगनाशक तुलसीदलको मस्तकमें धारण करने पर धर्म होता है, मिथ्याचारी दाम्भिक वैष्णव भी यदि मस्तकमें श्रीविष्णुप्रसादी तुलसीदल धारण करता है तो वह लोक पावन होता है। **बृहन्नारदीयमें श्रीयम भगीरथ संवादमें उक्त है-**

कर्णेन धारयेद् यस्तु तुलसीं सततं नर:।
तत् काष्ठं वापि राजेन्द्र तस्य नास्त्युपपातकम्।।

जो मनुष्य निज कर्णमें तुलसीपत्र अथवा काष्ठ, सतत धारण करता है, वह उपपातक दोष से लिप्त नहीं होता है।

हरिभक्ति सुधोदयमें वैष्णव विप्रके प्रति यमदूतों का कथन इस प्रकार है-

कस्मादिति न जानीमस्तुलस्याहि प्रियो हरिः।
गच्छन्तं तुलसीहस्तं रक्षन्नेवानुगच्छति।।

हम सब अच्छी तरह जानते हैं, कि श्रीहरि तुलसी प्रिय हैं। कारण--तुलसीदल हाथमें लेकर जोव्यक्ति गमन करता है, श्रीहरि मानो उसको रक्षाके लिए पीछे-पीछे चलते रहते हैं। **पुराणन्तरमें कथित है-**

यः कृत्वा तुलसीपत्रं शिरसा विष्णुस्तत्परः।
करोति धर्मकार्याणि फलमाप्नोति चाक्षयम्।।

तुलसी को विष्णुप्रिया जानकर श्रीविष्णु को प्रसन्नताके लिए जो व्यक्ति मस्तक में तुलसीदल रखकर धर्म कार्य करता है, उसको उस कार्यसे अक्षयफल मिलता है।

तुलसीदल भक्षण माहात्म्य।

गरुड़पुराणमें उक्त है- मुखेतु तुलसीपत्रं दृष्टवा शिरसि कर्णयोः।
कुरुते भास्करि स्तस्य दुष्कृतस्य तु मार्जनम्।।
त्रिकालं विनतापुत्र प्राशयेत्तुलसीं यदि।
विशिष्यते कायशुद्धिश्चान्द्रायणशतं विना।।

जिस व्यक्तिके मुख, मस्तक, कर्णोंमें तुलसीपत्र शोभित हैं, उसको देखकर यमराज उसके पापों को क्षमा करदेते हैं। यदि त्रिकाल तुलसीपत्र का सेवका सेवन कोई व्यक्ति करे तो उसकी कायशुद्धि हो जाती है, जो शुद्धि शत चान्द्रायण के बिना सम्भव नहीं है।

स्कन्द पुराणके श्रीवशिष्ठ मान्धातृ संवादमें उक्त है-

चान्द्रायणात्तप्तकृच्छात् ब्रह्मकूर्च्चात् कुशोदकात्।
विशिष्यते कायशुद्धिस्तुलसीपत्रभक्षणात्।।
तथाच तुलसपत्रभक्षणात् भाव वर्जितः।
पापोऽपि सद्गतिं प्राप्त इत्येतदपि विश्रुतम्।।

चान्द्रायण ब्रह्मकूर्च्च कुशोदक से जो शुद्धि नहीं होती है, वह शुद्धि तुलसीपत्र भक्षण से होती है। भक्तिहीन व्यक्ति भी यदि तुलसी पत्र भक्षण करता है तो वह पापी होने परभी सद्गति को प्राप्त करता है।

स्कन्द पुराण के ब्रह्मनारद संवादमें कथित है-

क्षीराब्धौ मध्यमाने हि तुलसी कामरूपिणी।
उत्पादिता महाभागा लोकोद्धारण-हेतवे।।
यस्याः स्मरण मात्रेण दर्शनात् कीर्त्तनादपि।
विलयं यान्ति पापानि किं पुनर्विष्णुपूजनात्।।
जातरूपमयं पुष्पं पद्मरागमयं शुभम्।
हित्वा तु रत्नजातानि गृह्णाति तुलसीदलम्।।
भक्षितं लब्धकेनापि पत्रं तुलसी सम्भवम्।
पश्चादिष्टान्तमापन्नो भस्मीभूतं कलेवरम्।।
सितासितं तथा नीरं सर्वपापक्षयावहम्।
तथा च तुलसीपत्रं प्राशितं सर्वकामदम्।।
यथा जातवलो वह्निर्दहते काननादिकम्।
प्राशितं तुलसीपत्रं तथा दहति पातकम्।।
यथा भक्तिरतो नित्यं नरोदहति पातकम्।।
तुलसी भक्षणान् मुञ्चेत् श्रुतमेतत् पुराहरेः।।
तावत्तिष्ठन्ति पापानि देहिनां यमकिङ्कराः।
यावन्न तुलसीपत्रं मुखे शिरपि तिष्ठति।।
अमृतादुत्थिता धात्री तुलसी विष्णुवल्लभा।
स्मृता संकीर्त्तिता ध्याता प्राशिता सर्वकामदा।।

लोकोद्धारके लिए क्षीराब्धि मन्थनके समय कारूपिणीतुलसी उत्पन्न हुई। जिसके स्मरण, दर्शन, कीर्त्तन मात्रसे ही पापसमूह विनष्ट हो जाते है, तुलसी पत्रसे विष्णु पूजनसे जो पाप विनष्ट होगा, यह अधिक क्या है? रत्नसमूह को वर्जन करके ही तुलसीदल को ग्रहण करते हैं। व्याधने तुलसीपत्र खा लिया था, उसके बाद उसकी मृत्यु हुई और वह तुलसीपत्र भक्षणसे ही सकल पापोंसे मुक्त हो गया। जिस प्रकार प्रवल वनानल वनको जला देती है, उस प्रकार तुलसी पत्र भक्षण से सब पाप विनष्ट होते हैं। जिस प्रकार भक्तिमान के प्रतिदिन पाप नष्ट होते हैं, उसी प्रकार तुलसीपत्र भक्षणसे सब पाप नष्ट होते हैं। सहस्र चान्द्रायण व्रत एवं शत पराक व्रतभी तुलसीदल भक्षण के सदृश पाप हारक नहीं है।

मानव सहस्र पापाचरण करके भी तुलसीपत्र भक्षणसे पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह कथन मैंने श्रीहरिसे सुना है। हे यम किङ्करगण ! तबतक ही पाप पापीके शरीरमें रहता है, जब तक तुलसी मुखमें एवं मस्तकमें विराजित नहीं है। अमृत से धात्री एवं तुलसी की उत्पत्ति हुई है। अतः उसका स्मरण, कीर्त्तन, ध्यान, भक्षणसे सब कामना फलीभूत होती है।

उस प्रसंगमें ही श्रीयमराजके प्रति श्रीभगवान् का कथन इस प्रकार है-

धात्रीफलञ्च तुलसी मृत्युकाले भवेत् यदि।
मुखे यस्य शिरेदेहे दुर्गति-र्नास्ति तस्य वै।।
युक्तो यदि महापापैः सुकृतं नार्जितं क्वचित्।
तथापि गीयते मोक्षस्तुलसी भक्षिता यदि।।
लुब्धकेनात्मदेहेन भक्षितं तुलसीदलम्।
संप्राप्तो मत् पदं नूनं कृत्वा प्राणस्य संक्षयम्।।

मृत्युकालमें जिसके मुख, मस्तक, देहमें धात्रीफल एवं तुलसी का स्पर्श होता है, उसकी दुर्गति नहीं होती है। जिसकी कुछभी सुकृति नहीं है, और महापापों से युक्त है, तथापि तुलसी भक्षणसे वह मुक्त हो जाता है। व्याधने तुलसीपत्तीको खाकर ही विष्णुलोक को प्राप्त किया है। **पुराणान्तर में वर्णित है-**

उपोष्य द्वादशीं शुद्धां पारणे तुलसीदलम्।
प्राशयेद् यदि विप्रेन्द्र अश्वमेधाष्टकं लभेत्।।
तथैव तुलसीस्पर्शात् कृष्णचक्रेण रक्षितः।
ब्रह्मवन्धुरिति ख्यातो हरिभक्ति सुधोदये।।

शुद्ध एकादशी व्रत करके तुलसी दलसे पारण करनेपर आठ अश्वमेधका फल प्राप्त होता है। हरिभक्ति सुधोदय में वर्णित है कि तुलसी स्पर्शके ही कृष्णचक्रने ब्रह्मवन्धु की रक्षा की। **अतएव कहा गया है-** किं चित्रमस्याः पतितं तुलस्यादलं जलं वा पतितं पुनीते।।
लग्नाधिमालस्थलमालवाल मृत्स्नापि कृत्स्नाच विनाशनाय।।
श्रीमत्तुलस्याः पत्रस्य माहात्म्यं यदप्यीदृशम्।
तथापि वैष्णवैस्तन्न ग्राह्यं कृष्णार्पणं विना।।

कृष्णप्रियत्वात् सर्वत्र श्रीतुलस्याः प्रसङ्गत।
संकीर्त्त्यमानं धात्र्याश्च माहात्म्यं लिख्यतेऽधुना।।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जिसका दल सबको पवित्र करता है, उसकी मृत्तिकातो निखिल पापों को विनष्ट करेगी ही। यद्यपि श्रीतुलसी पत्रका माहात्म्य ही इस प्रकार है, तथापि वैष्णवजन कृष्णार्पण करके ही तुलसीपत्र ग्रहण करें, अनिवेति नहीं। श्रीकृष्ण प्रियताके कारण तुलसी की भांति आंवला की महिमा अनुपम है।

स्कन्द पुराणमें ब्रह्मनारद संवादमें, धात्री का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है- धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रपाणिनम्।
पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।

आमलकी की छायामें चक्रपाणि की अर्चना करने से मानव प्रतिपुष्पसे ही अश्वमेध यागका फल प्राप्त करता है।

तुलसी वेदी लेपन, पूजन, सन्ध्या दीपदान करना कर्त्तव्य है, यथा सम्भव इष्ट देवताका नाम जप करना कर्त्तव्य है, निर्जन एवं नीरवमें नाम जप करें, जपमाला लेकर बाहर जप करना अनुचित है, बाहर मानस जप प्रशस्त है।

अर्चने बाद विज्ञप्ति पाठ करें-

मन्त्रहीनं क्रियाहीणं भक्तिहीनं जनार्दन!
यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे।।
ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।।
त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ ! आर्यवचसा यदगादरण्यं।
मायामृगं दयितेप्सितमन्वधावत्
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्।।

अर्चनके बाद इष्ट देवके प्रियनाम कीर्त्तन करे। सन्ध्याकालमें आरति, कीर्त्तन एवं महापुरुषों के नाम कीर्त्तन आवश्यक है।

भजन नियम

निशान्त कीर्त्तन, मंगल आरति, जप, सन्ध्याकार्य, अर्चन,

भोगराग, आरति, शयन, प्रसादभोजन, मौनव्रत, विश्राम, ग्रन्थ आलोचना, सन्ध्या आरति कीर्त्तन, यथारीति इष्टनाम जप, भोगराग, आरति, शयन, इष्टनाम ग्रहण। इष्टनामका जप विशृङ्खल रूपसे करना उचित् नहीं है, नियम भंग करना दोष है। इष्ट देवका पूजन न करके भोजन ग्रहण करना निषिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित है-

कथञ्चिदपि नाश्नीयादकृत्वा कृष्णपूजनम्।
नचासमर्प्य गोविन्दे किञ्चिद् भुंजीत वैष्णवः।।

पूजन न करके भोजन न करे, देवताको भोग समर्पण न करके भोजन ग्रहण न करे।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पूजयेद्धरिम्।
अपूज्य भोजनं कुर्वन् नरकानि व्रजेन्नरः।।
यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं शूकरेष्विह जायते।
प्रातर्मध्यन्दिनं सायं विष्णुपूजास्मृतावुधैः।।
अशक्तो विस्तरेणैव प्रातः सम्पूज्य केशवम्।
संभोज्य भोजन कुर्यादन्यथा नरकं व्रजेत्।।

इष्टदेवका पूजन न करके किसी प्रकार से कभी भी भोजन न करे, देवताको भोग अर्पण न करके कभी भोजन ग्रहण न करे। एक समय, दो समय अथवा त्रिकालमें देवतार्चन करे। पूजन न करके भोजन ग्रहण करने पर नरक गमन सुनिश्चित है। प्रातःकाल, मध्यान्ह एवं सायंकाल में विष्णुपूजा विहित है, असमर्थ होने पर प्रातःकाल में पूजन करके ही भोजन ग्रहण करे–अन्यथा नरक में वास होगा। देवताको अर्पण न करके भोग ग्रहण निषिद्ध है। **हयशीर्ष पञ्चरात्र में उक्त है–**

नत्वेवापूज्य भुञ्जीत भगवन्तं जनार्दनम्।
न तत् स्वयं समश्नीयात् यद्विष्णो न निवेदयेत्।।

ब्रह्माण्ड पुराण में कथित है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम्।
अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम्।।

अनिवेद्य तु भुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः।
तस्मात् सर्वं निवेद्यैव विष्णौभुञ्जीत सर्वदा।।
अनिवेद्य तु यो भुङ्क्ते हरये परमात्मने।
मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः।।
अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसादिकम्।
कृत्वा विष्णूपभुक्तन्तु सदा सेव्यं हि वैष्णवैः।
गन्धान्नवरभक्ष्यांश्च स्रजो वासांसि भूषणम्।
दत्त्वा तु देवदेवाय तच्छेषाण्युपभुञ्जते।।

पत्र, पुष्प, फल, जल, अन्न, पेय, औषधि प्रभृति भोजनके लिए जो भी हो निवेदन करके ही भोजन करे। अनिवेदित भोजन से प्रायश्चित करना विहित होता है। अतएव सकल वस्तु निवेदन करके ही सर्वदा ग्रहण करे। जो लोक परमात्मा हरिको अर्पण न करके भोजन करता है, उसके मातापिता अक्षय नरकमें निवास करते हैं। नवीनवस्त्र, फल, अन्न, रस प्रभृति विष्णुके प्रसादी रूपमें ही ग्रहण करे। गन्ध, अम्बर, अन्न, उत्तम, भोजन, माला भूषण, देवादिदेव को अर्पण करके ही ग्रहण करे।

मानसिक साधना

श्रीहरि स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ विधि है। निरन्तर हरि स्मरण करनेसे अपर कर्त्तव्य न करने परभी कोई दोष नहीं होता है, हरिको कभी भी न भूलो, इस वचनको स्मरण रखने से अपर विधिपालनकी आवश्यकता नहीं होती है। श्रीहरि को भूलकर ही जीव प्रतिकूल अवस्थामें पड़ता रहता है, सुतरां श्रीहरि स्मरण सतत होनेसे ही जीव प्रतिकूलताको पारकर आनन्द राज्यमें प्रविष्ट हो सकता है, आनन्द राज्यमें मन प्रविष्ट होनेसे जीवको संसारमें भटकना नहीं पड़ता है, श्रुति कहती है, **न स पुनरावर्त्तते,** वह पुनर्वार लौटकर नहीं आता है।

मानव श्रीहरि को भूलकर ही संसार पथ के पथिक बना है। सुतरां श्रीहरि स्मरणरूप पथ परमार्थ पथ है, वह हमारे विपरितमार्ग में अवस्थित है, इस हेतु आनन्दमय परमार्थ पथमें चलना मानवके लिए

दु:खद है, अभ्यस्त पथके विपरीत चलनाही दु:खकर है। शास्त्र मतमें प्रतिकूलवेदनीयं दु:खम्, स्वभाव विरुद्ध होनेसे ही परमार्थपर्थ आनन्दपथभी दु:खकर रूपमें प्रतिभात होता है, सुदृढ़ अभ्यासके द्वारा ही स्वभावको आनन्दमय करना होगा, इसके लिए आवश्यक है- अकपट उत्साह। श्रुति संदेशभी यह है-**नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:**, दुर्बल व्यक्ति आत्मलाभ करनेमें समर्थ नहीं है। यहाँपर '**बल**' शब्द से अदम्य भजन उत्साह को ही जानना होगा। सुदृढ़ उत्साहसे दु:ख को महत्व न देकर भजन करते करते परमार्थ ही बहुविध उपलब्धि होती है। उस अनुभवको श्रीहरि नामके साथ स्वायत्त में रखना ही स्मृति साधना है। यह साधना निखिल क्रियाओं में अविचल रूपसे होती है, एवं यह ही परमपद प्राप्तिका परम उपाय है। मौन होकर सर्वदा सव कर्त्तव्य के मध्यमें इष्टदेवता के नाम रूप गुणलीला का चिन्तन मनमें करे। मानसिक चिन्तन को छोड़कर मनको खाली न रखे, मनका प्राण है-स्मरण, अत: साधन स्मरण लीलाके प्रति उदासीन होना अनुचित है। आड़म्बर विहीन भजन जीवन ही आदर्श है, भजन के लिए बाहर आड़म्बर न करें, एवं कृत्तिम अकृत्तिम भजनानुभवको भी व्यक्त न करे। प्रकाशसे शक्तिहानि, एवं मिथ्याभिनिवेश होता है, और सुगभीर नरक पात होता है। माला, तिलक, अर्चनादि अनुष्ठान को छोड़कर आन्तरिक उपासना को प्रकट न करे। इससे साधनसे फललाभ नहीं होता है। नवधा भक्ति अति गोपनीय है। नवधाभक्ति, '**प्रथम**' श्रवण है, इसमें इष्टदेवके नाम, रूप, गुण प्रभृति एवं आत्मतत्त्वकी वार्त्ता सन्निविष्ट है। श्रीभागवत प्रभृति प्रामाणिक ग्रन्थ के श्रवण को श्रवणाङ्ग साधन कहते हैं। जिस किसीके लिखित ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाओं में उत्तम विषय सन्निविष्ट होने परभी उसका श्रवण अनुचित है, कारण उसमें बीच बीचमें अज्ञात रूपमें प्राणघाती जहर होती है, उस विषयका प्रवेश हृदयमें प्रविष्ट होने से परमार्थ पथ रुद्ध हो जाता है, लेखक हृदय की मलिनता पाठकके हृदयको मलिन करती है। साधकके लिए सभा, समिति, सत्संग भवनमें एवं कथकके मुखसे श्रीभागवतादि कथा श्रवण दोषावह है, कारण सभाका आड़म्बर

एवं कथक का भक्तिविरुद्ध भावसे साधक चित्त आक्रान्त होता है, वक्ता कथक प्रभृति के उद्देश्य मूलक एवं भुलसिद्धान्त समूह साधके चित्त में विरुद्ध संस्कार उत्पन्न करते हैं। सद्गुरु के मुखसे ही श्रीहरि कथा श्रवण करे, एवं शास्त्र अध्ययन एवं मनन करे। (२) **कीर्त्तन**-श्रीहरि के नाम रूप गुण लीलाका कीर्त्तन। (३) **स्मरण**-नाम, रूप, गुण, लीला स्मरण। (४) **वन्दन, (५) दास्य, (६) सख्य (७) आत्मनिवेदन, (८) पादसेवन, (९) अर्चन।**

इष्ट देवताके सम्बन्धमें प्रेमज भाव उपस्थित होनेपर यथासाध्य गोपन करनेकी आन्तरिक चेष्टा करे, प्रेम हृदयकी वस्तु है, गोपन करने से अनुभूति एवं प्रीतिकी गंभीरता बढ़ती है, अविराम अश्रु कम्पादि को प्रकाश करने से स्नायु शिथिल होती है, एवं हृदय अनुभूति एवं प्रीतिशून्य होता है। अनुभूति शब्दसे इष्ट देवताके रूपादिके अनुभव को जानना होगा, प्रीति शब्दसे श्रीकृष्णको सुखी करनेकी भावनाको जानना होगा।

विश्वमें इष्टदृष्टिकी साधना

विश्वको इष्ट देवताके प्रति जो भाव है, उसी भावसे देखनेकी चेष्टा करे। इष्ट देवताके अधिष्ठान बुद्धिसे ही सब जीवके आनुकूल्य करे। प्रति जीवमें श्रीविष्णु विराजित हैं, यह न जानकर विष्णुपूजा करनेसे वह अधम पापी होता है। यह कर्म वैसाही होता है, जैसे कोई व्यक्ति किसीका चरण स्पर्श एक हाथ से करता है, और दूसरे हाथसे ईंट लेकर प्रहार करता है। धर्म वह ही है, जिसमें सबप्राणी को सम्मान देने की व्यवस्था है, इस प्रकार धर्ममें जिसका अविश्वास होता है, वह ही धर्मध्वजी कहलाता है।

उपासना का अर्थ यह है कि इष्ट एवं विश्ववासी के साथ समान आनुकूल्य से वर्ताव करना। व्यक्तिगत प्रशंसा, स्तुति, लाभादि के द्वारा प्रेरित होकर आनुकूल्याचरण करने पर आदर्शज्ञानका बाधक होता है। व्यक्तिग रूपसे किसी की निन्दा प्रशंसा निषिद्ध है। तत्त्व दृष्टि से जगत् को देखना ही शास्त्रोपदेश है। परम निवृत्ति धर्मावलम्बि व्यक्तिके लिए निवृत्ति मार्गके पथिका अनुसरण करना आवश्यक है। लाभ, पूजा,

प्रतिष्ठा प्रभृति की आवश्यकता जिसकी है वह कितना ही गुणवान, अनुष्ठान परायण क्यों न हो निवृत्ति मार्गीय व्यक्ति के लिए वह दर्शनीय नहीं है, उसका संश्रव त्याग करना भी सर्वथा उचित है।

रम्या उपासना का साधन

पहिलहिं राग नयनभङ्गया भेल। अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल।। इसमें आन्तर धर्मका प्राधान्य है, पूर्वानुभूत वस्तुही सादृश्यके द्वारा उद्दीप्त होकर हृदयको आकृष्ठ कर निमज्जित कर देती है, भाव एवं अभाव भेदसे आन्तरधर्म दो प्रकार होते हैं, इष्ट (विश्ववासी एवं आराध्य देवता) को सुखी करने के लिए जो चिन्ता प्रवाह, सेवाभावना, एवं प्राप्तिव्याकुलता के साथ ताल मिलाकर चलने का नाम ही भाव है, इस भावमें निजसुखवासना का कणमात्रभी नहीं रहता है।

निजसुख भावना का नाम ही अभाव है, आत्मसुा को अवलम्बन करके ही काम्यकर्म में प्रवृत्ति होती हैं। सुतरां "मैं" न रहने से ही इष्टकी सुख भावना अवश्यम्भावी होगी। अन्यथा-**अभिमानी भक्तिहीन जगमाझे सेइ दीन। वृथातार अशेष भावना।।** कथन सार्थक होता है।

"मैं" रूप अहंकार से केवल आत्म कल्याण कामनाही चलती रहती है, इस भावना से अपने को मुक्त न करनेसे किसी भी साधनमें सफलता नहीं होगी। साधनज गुणसे उक्त अभिमान पुष्ट होता है, और इष्टके साथ ममत्व स्थापन का द्वार उससे रुद्ध हो जाता है। अन्तर्मना होकर अभावके स्तर समूहका अनुभव करनेमें असमर्थ होने पर भावकी निर्म्मलता का बोध नहीं होता है। अभाव को ही भाव मान लेने से निखिल साधना व्यर्थ होती है, एवं अभावके साथ भावका भेद न समझने के कारण ही उपधर्मकी सृष्टि होती है, आज जगत् में इस प्रकार उपधर्म व्याप्त होकर है। आजकल प्रवचन, लीलाकथा का ज्यादा प्रचलन है, किन्तु यह सब स्वीय अनुभूत प्राकृत रसका परिवेषण है, श्रोता एवं वक्ता सजातीय है, केवल बाहर देखने में कुछ विषमता है, उससे जो तरल अभिमान एवं आनन्द होता है, वह भी अभाव साम्राज्यके मध्यमें ही है, यह सब साधुजन सेव्य नहीं है।

काय वाक्य मनके द्वारा अपनेको निरन्तर भक्तिमय करना ही साधन से सिद्धिलाभ है, सुतरां रम्या उपासना में उक्त तीनवस्तु को निष्कपट रूपसे नियोग करे। परिचर्या, अर्चनादि शरीर सम्बन्धीय चेष्टाही कायिक साधना है। मनोमूल संसार होने के कारण मानसिक साधनादि प्रधान है। यावतीय मनोव्यापार को इष्ट सेवामें नियोग करना ही मानस साधन है, यह स्वारसिकी होनेसे ही रम्या उपासना होती है। मानस साधन अनेक प्रकार है, उसमें से इष्टकी मधुर लीला की चिन्ता करके अनुरूप भावसे निज सिद्ध देहसे सेवानुकूल्य करना ही रम्या उपासनाका अनुसरण है, इसका ही अहर्निश स्मरण करते हैं। इस प्रकार साधनका का अधिकारी विरल है, प्रथम शास्त्रज्ञ, अनुभवी, निष्कपट, आचरणरत श्रीगुरु एवं इष्टमें आत्मसमर्पण, विषय संस्पर्श त्याग, एकमात्र इष्टको अपनाकर एकान्त वास, तत्त्वज्ञ भजननिपुण व्यक्तिही उक्त उपासनाका अधिकारी है। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, इन्द्रिय तर्पण प्रियता की वासनासे परिचालित व्यक्ति का उसमें अधिकार है ही नहीं, वर्त्तमान कालमें उक्त अधिकारी व्यक्ति ही भजनोपदेष्टा है यह तो कथामात्र है, निर्वाहका साधन है, अधिकारी नहीं है। क्यो नहीं अधिकारी होगा? इसके लिए विस्तृत जानकारी प्राप्त करना सद्गुरुसे एवं सत् शास्त्रसे आवश्यक है। सारकथा तो यह है कि – इष्टकी रूपानुभूति हृदयमें प्रतिष्ठित न होने पर, जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम, जाति, शरीरमें ममत्व बोध आदि को न भूलनेसे उक्त साधन करने की शक्ति नहीं होती है। 'मैं' से जो भी उत्पन्न होता है, सब कुछ ही अभाव है। इसको छोड़ने के लिए इसका पूर्णज्ञान होना आवश्यक है, इष्टको ग्रहण करने के लिए इष्ट के परिकरों के हृदय के साथ पूर्ण परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है, अन्यथा वर्जन एवं ग्रहण निष्क्रिय रहेगा।

स्थूलतः– उसको जानने के लिए तीन प्रकार पथको जानना आवश्यक है, प्रथम है शरणागति। यह सर्वश्रेष्ठ साधन है, केवल शरणागति के द्वारा ही साधक की सिद्धि हो सकती है, शरणागति छै अंगोंसे पूर्ण है–

१. इष्टकी सुख भावना, वह सुखी बने। २ इष्टजिस चीज को पसंद नहीं करते हैं, उसका सर्वथा परित्याग करना, ३. इष्ट ही सर्वथा रक्षक हैं, यह विश्वास, इष्ट मंगलमय हैं, अमंगलकी भांति आपाततः कुछ उपलब्धि होने पर भी मंगलमय जिससे मंगल होता है, उसका विधानही करते हैं, इस प्रकार विश्वास करके कर्मफल से उत्पन्न सुख दुःख से, सुखी दुःखी न होकर, काय वाक्य मनसे कर्त्तव्य में रत रहना। ४. इष्टको रक्षक रूपमें वरण करना, और किसी को नहीं, जागतिक रीति की वर्जन करना उचित है, जागतिक रीति में विपत्तिके समय असरलता, मिथ्या, दुष्ट कौशल की चिन्ता, सुजन दुर्जन लोकोंका आश्रय ग्रहण होता है, पारमार्थिक व्यवहारमें उसका वर्जन होता है। इष्टके साथ सदा सरल व्यवहार करना होता है। ५ आत्म निक्षेप- मेरा अथवा अपर किसी का कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। इष्ट ही एकमात्र कर्त्ता है, इस प्रकार जानना। तत्त्व आलोचनासे ही इसका बोध होता है, तत्त्व आलोचना के अभावसे उक्त नहीं होता है। इष्ट ही एकमात्र कर्त्ता है, इसप्रकार बोध होनेपर सद्व्यवहारसे आकर्षण, असद्व्यवहार से विद्वेष नहीं होता है, राग एवं द्वेषही संसारका कारण है, रागद्वेष को छोड़कर कर्ममें प्रवृत्ति नहीं होती है, काम्यकर्म न करनेसे जन्मादि संसार बन्धन नहीं होता है। ६ **कार्पण्य**-इष्टका प्रभुत्व, एवं अपना क्षुद्रत्व स्वीकार, इष्टके समीपमें विज्ञापन।

आनुकूल्यस्य संकल्प प्रातिकूल्यस्य बर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।

आनुकूल्यस्य संकल्प - इष्ट, गुरु, विश्ववासी की सुख भावना।
प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् - उन सबके अप्रिय कार्य न करना।
रक्षिष्यतीति विश्वास - रक्षा करेंगे, यह विश्वास।
गोप्तृत्वे वरण - रक्षक रूपमें इष्टको वरण करना।

आत्मनिक्षेप – ईश्वर कर्त्ता, अपर किसीका कर्त्तृत्व नहीं है, ऐसा जानना।
कार्पण्य – ईश्वर का प्रभुत्व, एवं अपना क्षुद्रत्व को जानकर प्रकाश करना।

पारमहंस्य संहिता उत्तम धर्मके अधिकारी का जो परिचय है, वह भी मानसिक व्यापार है, मनकी शुद्धि न होने पर बाहरके चिन्ह से अनर्थ ही होता है। सुतरां मानस साधना से ही अधिकार आता है। अधिकारीके प्रसंगमें उद्धृत श्लोकांश इस प्रकार है–

"प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां"

प्रोज्झित–प्र–उज्‌भिक्त, कैतव–कपटता। अर्थात् मोक्षकी अभिसन्धिभी नहीं रहेगी। केवल सेवाभाव ही रहेगा, विनिमय पद्धति नहीं 'मैं' इस अभिमानसे भोग वासना होता है, उससे जन्म मृत्यु प्रवाह बना रहता है, इससे निष्कृति प्राप्त करने के लिए तत्त्वज्ञ जीवकी चेष्टा होती है, उसमें दो वासना न रहना गुण है। **प्रथम**–उपासना करते रहनेसे, न चाहने पर भी मुक्ति मिलेगी, इस प्रकार अभिसन्धि न होना **द्वितीय**–निर्मत्सर सज्जन अर्थात् परश्री कातरता शून्य सज्जन होना आवश्यक है। व्याध स्वभाव सम्पन्न व्यक्तिगण दूसरे के दुःख को देखकर उल्लसित होते हैं, किन्तु सज्जनगण, दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं। किन्तु दूसरे को सुखी देखकर सुखी होना अति कठिन कार्य है, ऐसा सज्जन विरल है। जो लोक दूसरे के दुःखसे दुःखी एवं सुख से सुखी होते हैं वे ही निर्मत्सर अर्थात् मात्सर्य हीन सज्जन हैं। अकृतज्ञव्यक्ति किसीसे उपकृत होकर दैवात् अपकार प्राप्त होनेसे पूर्व उपकार को भूलकर उपकारकारीके प्रति विद्वेषभाव पोषण करता है, ऐसा व्यक्ति धनजन पारिवारिक सम्पद युक्त होनेपर भी उससे वह सर्वदा अपनेको दुःखी मानता रहता है, ऐसा व्यक्ति अति मात्सर्य परायण होता है।

कृतज्ञव्यक्ति, सर्वदा अनिष्टकारी भी यदि कदाचित् उपकार करता है, तो उस उपकारके अवलम्बन से अपकारी की महिमा वर्णन करता है। अपकार को भूलजाता है, अथवा उससे अपने दोष को ही कारण मानलेता है। यह व्यक्ति संसारिक विभिन्न क्लेशसे क्लिष्ट नहीं

होता है, यह व्यक्ति निर्मत्सर होता है। भोगवासना, मोक्षवासना, मोक्षाभिसन्धिशून्य केवलाभक्ति है, सेवाभाव एवं दूसरे के सुखसे सुखी होना ही इसमें स्थायीभाव है। इस प्रकार मानसिक अवस्था प्राप्तिके लिए मानसिक साधनकी आवश्यकता है। इस साधनाके लिए यम नियमरूप साधनकी आवश्यकता है। यम नियम साधन व्यतीत मुक्ति एवं सेवाभाव प्राप्ति की सम्भावना है। यद्यपि रम्या उपासनामें यम नियमादिका उल्लेख नहीं है, तथापि श्रवणादि अंगमें उसका अन्तर्भाव है। यम नियम उस सेवाभव के अन्तर्गत रूपसे चलते रहते हैं। सेवाप्रधान व्यक्तिमें यम नियमका अभाव दृष्ट होने पर उसकी साधना ठीक नहीं है, जानना होगा। यम पञ्चाङ्ग है उसका नियम पञ्चाङ्ग है। **पञ्चाङ्गयम** – (१) अहिंसा– किसीकी अनिष्टजनक अथवा अपमानजनक शारीरिक, वाचिक चेष्टा न करना, उस मानसिक भाव पोषण भी न करना। जबतक **'मैं'** केवल निज लाभ पूजा प्रतिष्ठा का अनुसंधान रहता है, तबतक परहेलन प्रभृति हिंसाकार्य अनिवार्य रूप होगा। **'मैं'** पर्यन्त सूक्ष्म रूपसे हिंसा रहती है। हिंसा तो समझनेमें आती है, किन्तु सूक्ष हिंसा समझना शक्त है। काय वाक्य मनसे प्राणीमात्र को उद्वेग न देकर एवं विश्वदृष्टि की रीति से सर्वत्र इष्टभावना के द्वारा हिंसावृत्ति विदूरित होती है। **सत्य**–(२) यथायथ रूप वाक्य एवं मनकी अवस्था है। दृष्ट एवं श्रुत पदार्थ को यथायथ कहना इसमें होता है। राग एवं द्वेष से बढ़ाकर चढ़ाकर कहना सत्यका विरोधी है। श्रीगुरुदेव की महिमाभी मिथ्यारूप से बढ़ाचढ़ाकर कहने की चेष्टा सत्य साधना का विरोधी है। उनके सत्य चरित्र के मध्यमें ही ईश्वरीय महिमा का अवधारण करना आवश्यक है। **अस्तेय** – (३) स्तेय अर्थात् चोरी करने का भाव न होना, जिसका मालिक नहीं है, उसको प्राप्त करने की इच्छा भी स्तेय है, उक्त भाव न रहना ही अस्तेय है। **ब्रह्मचर्य**–(४) स्त्री–पुरुष विषयक यौनभावको काय वाक्य मनसे त्याग करना ही ब्रह्मचर्य है। **अपरिग्रह** – (५) दूसरे का द्रव्य न लेना, अथवा आवश्यकता के अतिरिक्त धन संचय न करना ही अपरिग्रह है। **पञ्चाङ्ग**

नियम – **शौच** (६) मिट्टी जल आदि के द्वारा बाहर शरीर परिष्कार करना वाह्य शौच है, प्रीति दया प्रभृति साधुभाव के द्वारा अन्तर निर्मल करना ही अन्तःशौच है। **सन्तोष**–(७) निःस्वार्थ, अभिसन्धिशून्य रूप भावसे परोपकारादि करनेसे जिस प्रकार अन्तःप्रसन्नता होती है, दुःखकर घटना के समयभी उस प्रकार मनोभाव को अन्तरमें रखना ही सन्तोष साधना है। दुःख क्लिष्ट चित्तमें नाम, ध्यान, उन्नतभाव प्रकाशित नहीं होता है, स्फूर्ति भी नहीं होता है, आमोद, हर्ष, प्रभृति राजसिक भावभी उन्नत भाव प्रकाश का बाधक है। स्निग्ध पवित्र सात्त्विक भावही सन्तोष है। **तपस्या**–(८) इन्द्रिय सुख भोगसे चित्त संकीर्ण होनेसे चित्तमें पवित्र सन्तोष अथवा उन्नतभाव का विकास नहीं हो सकता है, इसहेतु इन्द्रिय सुख त्यागरूप तपस्या की आवश्यकता है। जैसे व्रत उपवास प्रभृति है। **स्वाध्याय**–(९) जप एवं ग्रन्थ आलोचना प्रभृति को स्वाध्याय कहते हैं। **ईश्वर प्राणिधान**–(१०) यह यम नियम योग के अंगीभूत है, यम नियमके अभावसे इष्टसिद्धि नहीं होती है, रम्या उपासनारत व्यक्तिगण हरिलीला भक्तचरित्र श्रवणादिके द्वारा उसकी साधना करें। भक्ति विरोधी हिंसा भाव उद्बुद्ध होनेसे विरुद्ध भावीद्बोधक श्रीहरिलीला भक्तचरित्र का श्रवणानुष्ठान करे, हिंसाके समय कारुण्यलीला, असत्यभावके समय सत्यनिष्ठा, लोभ उपस्थित होने पर त्याग वैराग्य, यौनभाव उपस्थित होने से वैराग्यलीला, संचय वासना उपस्थित होनेसे अनिकेत चरित्रका श्रवण कीर्त्तन स्मरण करे। ऋषि के मतमें विरुद्ध भावके द्वाराही हिंसाद्वेषादिका परिहार करे। विरुद्ध भावना न करके उन्नत विषयकी भावना फलदायक नहीं होती है, चित्तमें हिंसाभावादि के अवस्थान के समय इष्ट स्मरण से विशेष लाभ नहीं होता है। चित्त प्रसन्न न होने से मलिन चित्तमें उन्नत सेवाभाव का आविर्भाव नहीं होता है, चित्त प्रसन्नताके लिए मानस साधना आवश्यक है, जिसके साथ आत्मीयता नहीं है, उसकी उन्नति से मात्सर्य उदित होता है, उस समय बन्धु की उन्नति को देखकर सुखोदय जैसा होता वैसा आनन्द एवं सुखका अनुसन्धान करे। शत्रुका दुःखसे हर्ष होता

है, इस मलिन भावको बिदूरित करनेके लिए आत्मीय के दुःखसे जिस प्रकार करुणाका उदय होता है, उसकी चिन्ता करे। विरुद्ध व्यक्ति को उत्तमकार्यरत देखकर चित्तमें ज्वलन होता है, उसको शान्त करने के लिए आत्मीय व्यक्ति के उत्तम कार्य का स्मरण करे।

रम्या उपासनामें इष्टनाम ग्रहण ही प्रधान साधन है, इष्टनाम ग्रहणकी रीति इस प्रकार है-उत्तम होकर अपने को तृणाधम माने, निरभिमान, वृक्ष के समान परोपकारी एवं सहिष्णु बने। प्राणीमात्र को सम्मान प्रदान करे, सर्वत्र इष्ट अवस्थित हैं। संशय हो सकता है कि - उत्तम व्यक्ति ही देवार्चन में अधिकारी है, यहां पर नीच अभिमान से अधोगति होगी ? ऐसा नहीं है- असत् संग त्यागही प्रथम आचरण है। सत्संगसे ही सेवाभाव का उदय होता है। उसकी रक्षा भी सत्संगतिसे ही होगी इसलिए सत्संग, इष्टसेवा, नामस्मरण ही कर्त्तव्य है। सत्संग शब्दसे सत्शास्त्र का संगही ग्रहणीय है, व्यक्तिका नहीं, अन्यथा पतन अवश्यम्भावी है, सत्संगकी आवश्यकता जिस प्रकार है, असतसंग त्यागकी प्रयोजनीयता ततोऽधिक है, इसमें असत् संग है भोगेच्छा एवं मुक्तीच्छा। दोनों इच्छाको न छोड़ने से सेवावृत्ति में अधिकार नहीं होता है। असत्संग त्याग शब्दका अर्थ है असत् वस्तुके प्रति महत्व न रखना, विद्वेष एवं अवहेलन नहीं, परित्याग करने के लिए ही असाधु संज्ञा दी गई है। निज उन्नतभाव विनष्ट होगा, अतः असत्संग न करना परम कर्त्तव्य है, आचार्य गुरुका ही नाम है। गुरु-शास्त्रज्ञ, अनुभवी, आचरण परायण होना आवश्यक है, इसप्रकार गुरुके अनुशासन में रहकर धर्म जीवन यापन करना कर्त्तव्य है।

श्रीविष्णु का ध्यान-

ॐ ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी, हारी हिरण्मयवपुर्धृत शङ्खचक्रः।।

प्रणाम- ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण-हितायच।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहिमां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरोहरिः।।

सूर्यध्यान- ॐ रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं, भानुं समस्त जगतामधिपं भजामि पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्य मौलिर-रुण्यङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्।।

प्रणाममन्त्र - जवाकुसुम-शङ्काशंताराग्रह विमर्दकम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।।

अर्घ्यदान- इदमर्घ्यं श्रीसूर्याय नमः।।
नमौ बिवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे जगत् सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने। नमो भागवते तुभ्यं नमस्ते जात वेदसे दत्तमर्घ्यं मयाभानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते।।

गणपति ध्यान-ॐखर्वं स्तुलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्वोदरं सुन्दरं प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्। दन्ताघात-विदारिता-रिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरम् वन्दे शैलसुतांसुत गणपतिं सिद्धिप्रद कर्मसु।

प्रणाममन्त्र - ॐ एकदन्तं महाकायं लम्वोदरं गजाननं विघ्नना-शकरं देवं हेरम्वं प्रणमाम्यहम्।।

महेश का ध्यान - ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं, रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्ग परशुमृगवराभीहितस्तं प्रसन्नम् पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिवसानं, विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

प्रणाममन्त्र - ॐ नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः।।

श्रीदुर्गाका ध्यान - ॐ जटाजुटसमायुक्तमर्द्धेन्दुकृतशेखराम्।
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्।।
अतसी पुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।।

सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम्।
त्रिभंगरूपासंस्थानां महिषासुरमर्द्दिनीम्।।
मृणालायसंस्पर्श दशबाहुसमन्विताम्।
त्रिशुलं दक्षिणे ध्येयं खड्गं चक्रं क्रमादधः।।
तीक्ष्णवाणं तथाशक्तिं दक्षिणेषु विचिन्तयेत्।
खेटकं पूर्वचापश्च पाशमङ्कुशमेव च।।
घण्टां वा परशुं वापि वामतः सन्निवेशयेत्।
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्।।
शिरश्चदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम्।
हृदिशूलेन निर्भिन्नं निर्ष्यदन्त्रविभूषितम्।।
रक्तारक्तीकृताङ्गश्च रक्तविस्फुरितेक्षणम्।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रूकुटीभीषणाननम्।।
सपाशवामहस्तेन धृतकेशञ्च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्चदेव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्।।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम्।
किञ्चदूर्द्धं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि।।
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्।
उग्रचण्डा प्रचण्डाच चण्डोग्रा चण्डनायिका।।
चण्डाचण्डवतीचैव चण्डरूपातिचण्डिका।
अष्टाभिः शक्तिभिस्ताभिः सततं परिवेष्टिताम्।।
चिन्तयेज्जगतां धात्रीं धर्मकामार्थ मोक्षदाम्।।

प्रणाममन्त्र- या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपणे संस्थिता।
नमस्तस्यैं नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

अथ दुर्गायाः शतनाम स्तोत्रम्।

ईश्वर उवाच - शतनामप्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती।।१।।

ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया आद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी।।२।।
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः।
मनोबुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिताचितिः।।३।।
सर्वमन्त्रमयी सत्या सत्यानन्द-स्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः।।४।।
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रियासदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी।।५।।
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीर-रंजिनी।।६।।
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी पुरसुन्दरी।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता।।७।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः।।८।।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियासत्या च बुद्धिदा।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहन-वाहना।।९।।
निशुम्भशुम्भशमनी महिषासुरमर्दिनी।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी।।१०।।
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा।।११।।
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्यधारिणी।
कुमारी चैक कन्या च कैशोरी युवती यतिः।।१२।।
अप्रौढ़ा चैव प्रौढ़ा च वृद्धमाता बलप्रदा।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाफला।।१३।।
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।।१४।।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी।।१५।।
शिवदूती कराली च अनन्ता परेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी।।१६।।

य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति।।१७।।
धनधान्यं सुतं छायां हयं हस्तिनमेव च।
चतुरङ्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिञ्च शाश्वतीम्।।१८।।
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
पूजयेत् परया भक्त्या पठन्नामशताष्टकम्।।१९।।
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि सर्वैः सुरवरैरपि।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात्।।२०।।
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदाधारयते पुरारिः।।२१।।
भौमावास्यानिशाभागे चन्द्रेशतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं सम्भवेत् सम्पदांपदम्।।२२।।
इति विश्वसारतन्त्रे दुर्गाशतनामस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ शिवस्तोत्रम्

धरापोऽग्निमरुद्व्योम-मखेशेन्द्वर्क-मूर्त्तये।
सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमो नमः।।१।।
श्रुत्यन्तः कृतवासाय श्रुतये श्रुतजन्मने।
अतीन्द्रियाय महसे शाश्वताय नमो नमः।।२।।
स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्द्देश्याय शम्भवे।
भवाय भवसम्भूते दुःखहन्त्रे नमोऽस्तुते।।३।।
तर्कमार्गादि भूताय तपसां फलदायिने।
चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमो नमः।।४।।
आदिमध्यान्त-शून्याय निरस्ताशेषभीतये।
योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमो नमः।।५।।
विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय विलसच्चन्द्रमौलये।
कन्दर्पदर्पनाशाय कालहन्त्रे नमोऽस्तुते।।६।।

विषाशनाय विहरद् वृषस्कन्धमुपेयुषे।
सरिद्धाम-समावद्ध-कपर्दाय नमो नमः।।७।।
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धनामन्तरात्मने।
पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमो नमः।।८।।
तुष्टाय निजभक्तानां भुक्तिमुक्ति प्रदायिने।
विवाससेऽनिवासाय विश्वशास्त्रे नमो नमः।।६।।
त्रिमूर्त्तेर्मूलभूताय त्रिनेत्रायादि शम्भवे।
त्रिधाम्नां धामरूपाय जन्मघ्नाय नमो नमः।।१०।।
देवासुर-शिरोरत्न किरणारुणिताङ्घ्रये।
कान्ताय निजकान्तायै दत्तार्द्धाय नमो नमः।।११।।
स्तोत्रेणानेन पूजायां प्रीणयेज्जगतः पतिम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं भक्त्या सर्वज्ञं परमेश्वरम्।।१२।।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि वर्त्तते।
ऐहिकं किं फलं तत्र मुक्तिरेव करेस्थिता।।१३।।

इति श्रीशिवस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ श्रीविष्णुस्तवः

आदाय वेदाः सकलाः समुद्रान्निहत्यशङ्ख रिपुमत्युदग्ररम्।
दत्ताः पुरा येनपितामहाय, विष्णुं तमादिं भज मत्स्यरूपम्।।१।।
दिव्यामृतार्थं महिते महाब्धै देवासुरैर्वासुकि मन्दराद्यैः।
भूमेर्महावेग-विघूर्णिताया-स्तं कूर्ममाधारगतं स्मरामि।।२।।
समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया, वसुन्धरा-मेरुकिरीटभारा।
दन्ताग्रतो येन समुद्धताभूत्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये।।३।।
भक्तार्त्तिभङ्गक्षमया धियायः स्तम्भान्तरान्तादुवितो नृसिंहः।
रिपुं सुराणां निशितै-र्नखाग्रै-र्विदारयन्तं नच विस्मरामि।।४।।
चतुःसमुद्राभरणाधरित्री, न्यासाय नालं चरणस्य यस्य।
एकस्य न्यस्य पदं सुराणां, त्रिविक्रमं सर्वगतं नमामि।।५।।

त्रि:सप्तवारं नृपतीन्निहत्य, यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः।
चकार-दोर्दण्डवलेन सम्यक्, तमादिशूरं प्रणमामि विष्णुम्।।६।।
कुले रघूणां समवाप्य जन्म, विधायसेतुं जलधेर्जलान्तः।
लङ्केश्वरं यः शमयाञ्चकार, सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या।।७।।
हलेन सर्वानसुरान्निकृष्य, चकारचूर्णं मुषल-प्रहारैः।
यः कृष्णमासाद्य-वलं वलीयान् भक्त्या भजेतं बलभद्ररामम्।।८।।
पुरासुराणामसुरान् विजेतुं संभावयंश्चीवर-चिह्नवेशम्।
चकार यः शास्त्रममौघ-कल्पं, तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम्।।९।।
कल्पावसाने निशितैः खुराग्रैः संघट्टयामास निमेषमात्रात्।
यस्तेजसा निर्दहतातिभीमो, विष्ण्वात्मकं तं तुरगं भजामः।।१०।।
शङ्ख सुचक्रं सुगदं सरोजं, दोर्भिर्दधानं गरुड़ाधिरुढ़म्।
श्रीवत्सचिन्हं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदिविष्णुमीड़े।।११।।
क्षीराम्बुधौ-शेषविशेषतल्पे, शयानमन्तः स्मितशोभिवक्त्रम्।
उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्वुदाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत् स्मरामि।।१२।।
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम्।।१३।।

इति विष्णुस्तवः समाप्तः

श्रीसूर्य कवचम्

श्रीसूर्य उवाच

शाम्ब शाम्ब महावाहो शृणु मे कवचं शुभम्।
यजज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलमाप्नोति निश्चितम्।।१।।
यद्धृत्वा च महादेवो गणानामधिपोऽभवत्।
पठनाद्धारणाद्विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्य्यमवाप्नुयुः।।२।।
कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टु वुदाहृतम्।
श्रीसूर्यो देवता चात्र सर्वदेवनमस्कृतः।
यश आरोग्य मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः।।३।।

प्रणवो मे शिरः पातु धृणिर्मे पातु भालकम्।
सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम्।।४।।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्ट-फलप्रदः।
ह्रीं वीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी।
चन्द्रवीजं विसर्गाढ्यं पातु मे गुह्यदेशकम्।।५।।
त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्व तन्त्रेषु गोपितम्।।६।।
शिवो-वह्नि समायुक्त वामाक्षिविन्दुभूषितः।
एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्त्तितः।।७।।
गुह्याद् गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिर्मतः।
शीर्षादि पादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः।।८।।
इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम्।
श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्य-विवर्द्धनम्।।९।।
कुष्ठादि रोगशमनं महाव्याधिविनाशनम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी वलवान् भवेत्।।१०।।
बहुना किमिहाक्तेन यद्यन्मनसि वर्त्तते।
तत्तत् सर्वं भवत्येव कवचस्य धारणात्।।११।।
भूतंप्रेत-पिशाचाश्च यक्षगन्धर्व-राक्षसाः।
ब्रह्मराक्षसवेताला नैव द्रुष्टमपि क्षमाः।
दूरादेव पलायन्ते तस्य सङ्कीर्त्तनादपि।।१२।।
भूर्ज्जपत्रे समालिख्य रोचनागुरुकुङ्कुमैः।
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्याञ्च विशेषतः।
धारयेत् साधकश्रेष्ठस्त्रैलोक्य विजयीभवेत्।।१३।।
त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद् दक्षिणे भुजे।
शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः।।१४।।
इति ते कथितं शाम्ब त्रैलोक्य मंगलाभिम्।
कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात् प्रकाशितम्।।१५।।
अज्ञात्वा कवचं दिव्यं जपेत् सूर्यमनुत्तमम्।
सिद्धिर्न जायते तस्य कोटिकल्पशतैरपि।।१६।।

इति ब्रह्मयामले त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीसूर्यकवचं समाप्तम्।।

श्रीहरिद्रागणेशकवचम्

ईश्वर उवाच-

शृणु वक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिकरं प्रिये।
पठित्वा धारयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात्।।१।।
अज्ञात्वा कवचं देवि गणेशस्य मनुं जपेत्।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटि शतैरपि।।२।।
ॐ आमोदश्च शिरः पातु प्रमोदश्च शिखोपरि।
सम्मोदो भ्रूयुगे पातु भ्रूमध्ये च गणाधिपः।।३।।
गण-क्रीड़ो नेत्रयुग्मं नासायां गणनायकः।
गणक्रीड़ान्वितः पातु वदने सर्वसिद्धये।।४।।
जिह्वायां सुमुखः पातु ग्रीवायां दुर्मुख सदा।
विघ्नेशो हृदये पातु विघ्ननाशश्च वक्षसि।।५।
गणानां नायकः पातु वाहुयुग्मे सदा मम।
विघ्नकर्ता च उदरे विघ्नहर्ता च लिंगके।।६।।
गजवक्त्रः कटि देशे एकदन्तो नितम्वके।
लम्बोदरः सदा पातु गुह्यदेशे ममारुणः।।७।।
व्याल यज्ञोपवीती मां पातु पाद युगे तथा।
जापकः सर्वदा पातु जानु जङ्घे गणाधिपः।।८।।
हारिद्रः सर्वदा पातु सर्वाङ्गे गणनायकः।
य इदं प्रपठेन्नित्यं गणेशस्य महेश्वरी।।९।।
कवचं सर्वसिद्धाख्यं सर्वविघ्नविनाशकम्।
सर्वसिद्धिकरं साक्षात् सर्वपापविमोचनम्।
सर्वसम्पत् प्रदं साक्षात् सर्वशत्रुक्षयङ्करम्।।१०।।
ग्रहपीड़ा-ज्वरो-रोगो चान्ये गुह्यकादयः।
पठनात् श्रवणादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात्।।११।।
धनधान्यकरं देवि कवचं सुरपूजितम्।
समो नास्ति महेशानि त्रैलोक्यगणंयस्य च।।१२।।

हारिद्रस्य महेशानि कवचस्य च भूतले।
किमन्यैरसदालापैर्यत्रायुर्व्ययतामियात्।।१३।।

इति विश्वसार तन्त्रे हारिद्रागणेशकवचं समाप्तम्।

पूजा के उपचार समूह इस प्रकार होते हैं-

पञ्चोपचार- गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेवच।
अखण्डं फलमासाद्य कैवल्यं लभतेध्रुवम्।।

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य-पञ्चविध द्रव्यको पञ्चोपचार कहते हैं। पञ्चोपचार से पूजन कर अखण्ड फल प्राप्तकर कैवल्य का अधिकारी होता है।

दशोपचार - पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमनं तथा।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दशक्रमात्।।

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य को दशोपचार कहते हैं।

षोड़शोपचाराः - पाद्यमर्घ्यं तथाचामं स्नानं वसनभूषणे।
गन्ध-पुष्प-धूप-दीप नैवेद्याचमनं ततः।।
ताम्बूलमर्चना-स्तोत्रं तर्पणश्च नमस्क्रिया।
प्रयोजयेच्च पूजामुपचारांस्तु षोड़श।।

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, स्तवपाठ, तर्पण, नमस्कार को षोड़श उपचार कहते हैं।

चतुःषष्ठ्युपचाराः - पाद्य, अर्घ्य, स्वागत, प्रश्न, आसनप्रदान, सुगन्धितेल, स्नानगृह प्रवेश, स्नानमण्डप मणिमण्डप में उपवेशन, उद्वर्त्तन, उवटन, उष्णोदकस्नान, कनककुम्भद्वारा सर्वतीर्थाभिषेक, धौतवस्त्रद्वारा अङ्गमार्जन, परिधेय रक्तवर्णपट्टवसन, उत्तरीयरक्तवर्ण पट्टवस्त्र, आलेप, मण्डपमें प्रवेश, आलेपन मण्डपमें उपवेशन, चन्दनागुरु, कुङ्कुम मृगमद कर्पूर कस्तूरी, गोरचना, दिव्यगन्धद्रव्य लेपन, केशकलापमें कृष्णागुरु

धूप, मल्लिका, मालती, जाती, चम्पक, अशोक, पद्म, गुवाक, पुष्प, पुन्नाग, कह्लार, यूथी एवं सर्वऋतु के कुसुम समूह के द्वारा भूषण निर्म्माण। अलङ्कार मण्डपमें प्रवेश, अलङ्कार धारण, मणिमयपीठमें उपवेशन, नवरत्न मुकुटदान, अर्द्धचन्द्रभूषण, सीमन्तमें सिन्दूर दान, तिलक रत्नदान, कृष्णागुरुके अञ्जन प्रदान, कर्णभूषण युगल, नासाभरण, अधर यावक, सुवर्ण निर्मित कण्ठमाल्य, कनके के विचित्र पदक, वृहद्पदक, मुक्तावली, एकावलीहार, चतुःषष्टिकहार, सुवर्ण केयूर युगल, रौप्य केयूर युगल, वलयचतुष्टय, उर्म्मिकावली, काञ्चीदाम कटीसूत्र, शोभानामक विभूषण, पादकटक, वलय, रत्ननूपुर, पादाङ्गुरीयक, एकहस्तमें पाश अपर हस्तमें अङ्कुश, अन्यहस्तमें पुण्ड्रनामक इक्षुदण्ड निर्मित धनुः, अन्यहस्तमें पुष्पवाण, माणिक्य पादुका, निज समान अस्त्रधारी देवता गणके साथ सिंहासनारोहण, कामेश्वर नामक पर्यङ्कमें उपवेशन, अमृतदान चसक, आचमनीय, कर्पूर वटिका, आमन्दोल्लास एवं विलासहास्य, मङ्गल आरति, श्वेतच्छत्र, चामरयुगल, दर्पण तालवृन्त गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य पानीय श्रीविद्याकी अर्चनामें उक्त उपचार प्रदेय है। उपचारके अभावसे उपचार प्रदान मन्त्रका पाठ करे। **तदुक्तं नवरत्नेश्वरे-**

चतुःषष्ठ्युपचारणामभावे तन्मनुं जपेत्।
तत्तदेव फलं विन्द्यात् साधकः स्थिरमानसः।।

बत्रिश (३२) सेवापराध-

१ पादुका पहनकर अथवा यानारोहणकर भगवन् मन्दिर में प्रवेश। २ भगवदुत्सवमें श्रीविष्णुकी सेवा न करना। ३ विष्णुके सम्मुखमें उपस्थित होकर प्रणाम न करना। ४ उच्छिष्ट अवस्था में अथवा अशुचि अवस्था में श्रीभगवत् प्रणामादि करना। ५ एकहस्त से प्रणाम करना। ६ श्रीविष्णुके सम्मुखमें अपरको प्रदक्षिणा करना। ७ श्रीविष्णुके समीपमें पाद प्रसारण करना। ८ भगवानके समक्षमें पर्यङ्क बन्धनकर उपवेशन करना। ९ देवताके समक्षमें शयन। १० भक्षण। ११ मिथ्या वाक्य कथन।

१२ उच्चैःस्वर से वाक्य प्रयोग। १३ परस्पर कथोपकथन। १४ क्रन्दन। १५ कलह। १६ किसीको निग्रह करना। १७ किसीको अनुग्रह करना। १८ स्त्रियोंके प्रति कर्कश वाक्य प्रयोग। १६ कम्बलावृत होना। २० श्रीभगवान्के सम्मुखमें किसीकी निन्दा करना। २१ किसी की स्तुति करना। २२ अश्लील वाक्य प्रयोग करना। २३ अधोवायु त्याग करना। २४ सामर्थ्यरहते हुए गौण उपचार प्रदान करना। २५ भगवान् को निवेदन न करके भोजन करना। २६ अग्रभाग किसी को देकर श्रीविष्णु को अवशेष देना। २७ समयोपयोगी द्रव्य प्रदान न करना। २८ असङ्कोचसे उपवेशन। १६ किसीकी व्याज स्तुति करना। ३० श्रीगुरुके समक्ष में उनकी प्रशंसा न कर मौन रहना। ३१ आत्म प्रशंसा करना। ३२ देवता की निन्दा करना।

श्रीमद्भागवत १२।१३।२१ में उक्त है-

नाम सङ्कीर्त्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

जिसके नाम का सङ्कीर्त्तन सर्वपाप नाशक है, प्रणाम दुःखनाशक है, उन परम हरिको मैं प्रणाम करता हूँ।

दिनचन्द्रिका समाप्त

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

क्रम सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००

२८–स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२९–श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०–श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१–श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२–श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३–श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४–भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५–प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६–वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७–तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८–भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९–परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०–कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१–भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२–प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३–दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४–भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५–श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६–श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७–श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८–श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९–श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०–सत्संगम्	५०.००
५१–नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२–श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३–श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००

५४–श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५–श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६–५७–५८–श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५६–काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०–श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१–अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२–श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३–शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४–संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५–प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००
६६–छन्दो कौस्तुभ	५०.००
६७–हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः	५०.००
६८–साहित्य कौमुदी	१००.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१–श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२–दुर्लभसार	१०.००
३–साधकोल्लास	५०.००
४–भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५–श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
६–श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	३०.००
७–श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८–भक्तिसर्वस्व	३०.००
९–मनःशिक्षा	३०.००
१०–पदावली	३०.००
११–साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२–भक्तिसंगीतलहरी	२०.००

गौशाला

आश्रम के अग्रभाग में एक बृहद् गौशाला है, जिसमें गोवंश की संख्या लगभग १६१ है। यहाँ पर गाय की सेवा (गो रक्षा) गाय के अनुकूल रूप में ही की जाती है न कि व्यवसाय की दृष्टि से। गाय श्रीकृष्णजी की भी पूज्य हैं जो कि उनकी भौमलीला से विदित है, उनको आदर्श मानकर ही यहाँ पर गाय की सेव्यरूप में सेवा की जाती है। गो-सेवा के लिए '**श्रीहरिदास शास्त्री गऊ संस्थान**' की स्थापना की गयी है तथा तेहरा ग्राम श्रीवृन्दावन के निकट 11 एकड़ भूमि भी खरीदी गयी है। वहाँ पर एक और नवीन बृहद् गौशाला है। वृद्धावस्था में भी महाराजश्री स्वयं गो-सेवा करते हैं। इस आश्रम का वातावरण प्राचीन समय के ऋषिकुलों जैसा है। आश्रम में एक विराट् ग्रन्थागार भी है जिसमें प्रचुर प्राचीन मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आश्रम की एक '**प्रेस**' भी है जिसका नाम '**श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस**' है। इस प्रेस से अभी तक लगभग ८० सद्ग्रन्थों का संस्कृत, हिन्दी एवं बँगला भाषा में प्रकाशन हो चुका है।

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

फोन : ०५६५-३२०२३२५